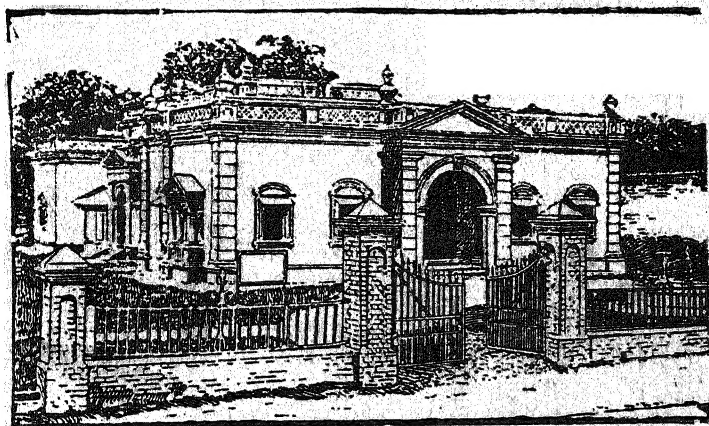
राजस्थान—केशरी

महाराणा प्रतापसिंह

(ऐतिहासिक नाटक)

श्री राधाकृष्णदास विरचित

“जो हठ रक्खै धर्म को तेहि रक्खै करतार”



काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित



दुर्गाप्रसाद खत्री द्वारा भारतजीवन प्रेस

काशी में मुद्रित



संवत् १९८० विक्रम

छठाँ संस्करण] १९२३ [मूल्य— ॥)



ग्रंथकर्त्ता बाबू राधाकृष्णदास।

B. J. P.

निवेदन ।

पूज्यपाद भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी ने एक याददाश्त पर लिखा था कि "किसी नाटक में (प्रतापसिंह के) अकबर का पालिसी स्पष्ट करके दिखाना"। उसे देख कर मैंने इस नाटक को लिखना आरम्भ किया और जगदीश्वर की कृपा से आज पूरा करके आप लोगों को भेंट करता हूं।

यद्यपि वीरवर महाराणा प्रतापसिंह तथा राजनीति विशारद अकबर का चरित्र जैसा अङ्कित करना चाहिये वैसा करने की तो मुझे सामर्थ्य नहीं है, तथापि यदि मेरे इस नाटक से उक्त भारतमुखोज्वलकारी प्रातःस्मरणीय महानुभाव के वीरचरित्र का प्रचार इस आत्मविस्मृत देश में कुछ भी हो, तथा सहृदय पाठकों का कुछ भी मनोरञ्जन हो सके, तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

इस नाटक को पहिले मित्रवर बाबू जगन्नाथ दास बी०ए० (रत्नाकर) ने अपने "साहित्यसुधानिधि" मासिक पत्र में छापना आरम्भ किया था तथा इसके संशोधन आदि में बहुत कुछ सहायता दी थी परन्तु हिन्दीरसिकों के अभाव से उक्त मासिक पत्र बहुत शीघ्र बन्द हो गया और ग्रन्थ अधूरा ही रह गया। परन्तु फिर पण्डित जगन्नाथ मेहता और बाबू श्याम-सुन्दर दास बी० ए० के उत्साह से यह पूरा हुआ और मुझे आप सज्जनों की भेंट करने का अवसर प्राप्त हुआ, अतएव मैं अपने इन मित्रों को हृदय से धन्यवाद देता हूं।

मित्रवर कुंवर योधसिंह मेहता उदयपुर निवासी ने मुझे बहुत सी ऐतिहासिक घटनाओं तथा कविताओं के संग्रह में

सहायता दी और उत्साहित किया इसलिये मैं उन्हें भी धन्यवाद दिए बिना नहीं रह सकता।

इस ग्रन्थ के लिखने में मुझे टाड साहब के "राजस्थान," पूज्य भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी के "उदयपुरोदय," कुंवर योधसिंह मेहता के "मेवाड़ का संक्षिप्त इतिहास," मुंशी देवी प्रसाद मुंसिफ जोधपुर के "महाराजा प्रतापसिंह के जीवन चरित्र" तथा कवि गणपतिराम राजाराम के गुजराती "प्रताप नाटक" से बहुत कुछ सहायता मिली है, इसलिये मैं हृदय से इन ग्रन्थकारों को धन्यवाद देता हूँ।

मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं भारतवर्ष के गौरव स्वरूप प्रसिद्ध व्यक्तियों के चरित्र, किसी को नाटक, किसीको उपन्यास और किसी को इतिहास स्वरूप में यथावकाश अपने पाठकों की भेंट करूँ, परन्तु यह इच्छा पूरी करना उन्हीं सहृदय पाठकों के हाथ है। यदि आप लोगों से यथोचित उत्साह मिलेगा और मुझे यह निश्चय होगा कि मेरा लेख आप को रुचिकर हुआ, तो मैं शीघ्र ही फिर आपकी सेवा में परम प्रसिद्ध भगवद्भक्तिपरायणा मीराबाई का नाटक तथा जीवनचरित्र (जिसे मैंने बहुत परिश्रम और खोज से संग्रह किया है) लेकर फिर उपस्थित होऊंगा।

अन्त में मेरी प्रार्थना है कि विज्ञ महाशयों की दृष्टि में जो त्रुटि इस नाटक में दिखाई दे कृपाकर उससे वे मुझे मित्रभाव से अवश्य सूचित करें जिसमें यदि उचित हो तो दूसरे संस्करण में धन्यवादपूर्वक वे त्रुटियाँ दूर कर दी जांय।

काशी चौखम्भा
श्रीगिरिधर जन्मोत्सव
संवत् १९५४ मि० पौषकृष्ण ३
ता: १२ दिसम्बर सन् १८९७ ई०

हिन्दी रसिकों का सेवक
श्रीराधाकृष्ण दास।

श्रीहरिः।

भूमिका

महाराणा उदयसिंह संवत् १५९७ (१५३९-४० ई०) में चित्तौर (मेवाड़) की राजगद्दी पर बैठे, अकबर ने बड़ी धूम-धाम से धावा किया परन्तु वह हार खा कर लौट आया। कुछ दिनों पीछे मेवाड़ में आपस की फूट देखकर अकबर को अवसर मिला और चित्तौर पर फिर उसने धावा किया। उदयसिंह अपनी जान लेकर भागे परन्तु राजपूत सरदारों ने अपना प्राण रहते चित्तौर शत्रुओं को न दिया। घोर युद्ध हुआ, जयमल और पुत्ता ने बड़ी वीरता से लड़ाई की। अन्त में मेवाड़ की राजलक्ष्मी भाग्यवान् अकबर के हाथ आई। इस लड़ाई में तीस हजार राजपूत वीर काम आए और बहुत सी स्त्रियां भी लड़कर मर गईं। शेष जो रह गई थीं उन्होंने "जहरव्रत" किया अर्थात् जलकर अपनी पवित्रता को बचाया। अकबर ने चित्तौर दख़ल किया। इसका पूरा वृत्तान्त फिर कभी निवेदन करेंगे।

उदयसिंह भाग कर पिपली राज्य के जंगलों में गोहिल जाति की सहायता से रहने लगे। वहां से वे अरावली की घाटी में आए, जहां बाप्पा रावल भी रहे थे। उन्होंने पहले उस स्थान पर अपने राजत्वकाल में एक झील बनवाई थी जिसका नाम उदयसागर है। अब एक छोटा सा महल बन-

वाया और फिर तो उसके आसपास और भी इमारतें बन गईं और वह एक छोटा सा नगर हो गया। उसका नाम उदयपुर रक्खा जो कि अब तक मेवाड़ राजवंश की राजधानी है।

चित्तौर जाने के चार वर्ष पीछे ४२ वर्ष की अवस्था में उदयसिंह ने संसार छोड़ा। उन्हें पचीस बेटे थे। मरते समय उदयसिंह ने छोटे बेटे को कुल की प्रथा के प्रतिकूल अपना उत्तराधिकारी बनाया। जगमल गद्दी पर बैठ गया परन्तु यह बात मेवाड़ के सरदारों को बहुत ही बुरी लगी और उन लोगों ने शीघ्र ही उसे उतार कर महाराणा प्रतापसिंह को गद्दी पर बैठाया।

प्रतापसिंह का जन्म जेठ सुदी १३ संवत् १५९६ को हुआ था और मिती फागुन सुदी १५ संवत् १६१८ को गांव गोघूंदे में वे गद्दी पर बैठे थे।

प्रतापसिंह राज्याधिकारी तो हुए परन्तु न तो उनके पास कुछ विशेष राजसी ठाट और न कोई दृढ़ किला रहा। प्रतापसिंह वीर पुरुष थे, उत्साह से हृदय भरा हुआ था, भीतर भीतर चित्तौर मुसल्मानों से छीन कर अपने कुल का गौरव पुनः स्थापन करने की अग्नि सुलग रही थी। यद्यपि सरदार लोग लड़ाई में हारते हारते टूट गए थे और उनका जी छोटा हो गया था परन्तु इनकी दृढ़ता, वीरता और उच्चाभिलाष देखकर फिर सभों को साहस हुआ, फिर सब कमर कस कर खड़े हुए, प्रतापसिंह ने इसकी तनिक भी परवा न की कि अकबर ऐसे बादशाह से लड़ने के लिये कोई सामान ठीक नहीं है। परन्तु उनका हृदय स्वाधीनता के सुस्वादु फल चखने के उमंग से भरा हुआ था। उन्होंने यह सोच कर कि जैसे

हमारे पूर्वजों ने इस चित्तौर की रक्षा की है और अपने शत्रुओं को इसी दुर्ग में कैद किया है क्या हम वैसा न कर सकेंगे, अकबर की सेना और सामान को तुच्छ जाना।

जिस समय प्रतापसिंह अकबर से लड़ने के लिये सन्नद्ध हो रहे थे, उस समय अकबर ऐसे उपायों में लग रहा था, जिनको सुनकर प्रतापसिंह अत्यन्त ही दुखित हुए। वह उनके जाति भाइयों तथा सम्बन्धीगण को अपनी ओर मिला रहा था।

मारवाड़, बीकानेर, आमेर, (जो कि पहले प्रताप के साथ थे) अकबर के पक्षपाती हुए, यहां तक कि प्रतापसिंह का सगा छोटा भाई (सक्का जी) सगर जी भी उनको छोड़ कर बादशाह से जा मिला और इसके बदले में उसे उसके पूर्वजों की राजधानी चित्तौर का क़िला दिया गया और वह राणा की पद्वी से भूषित किया गया।

ज्यों ज्यों उनके विरुद्ध सामान बढ़ते जाते थे त्यों त्यों प्रताप का उत्साह और साहस भी बढ़ता जाता था। उन्होंने अपनी जननी के दूध की सौगन्ध खाई कि जैसे होगा अपनी मातृभूमि का उद्धार करेहींगे। अकेले निःसहाय प्रतापसिंह ऐसे प्रतापी शत्रु के साथ २५ वर्ष तक बड़े पराक्रम से लड़ते रहे और अन्त में एक प्रकार सफल मनोरथ भी हुए।

महाराज मानसिंह गुजरात विजय करके लौटते हुए उदयपुर के रास्ते आए, प्रतापसिंह ने उनका बड़ा आतिथ्य सत्कार किया परन्तु वे उनके साथ खाने में शरीक न हुए, यही जड़ लड़ाई आरम्भ होने की हुई।

मानसिंह के दिल्ली आने पर, बादशाह ने राणा पर क्रुद्ध होकर मानसिंह के साथ मिती चैत्र सुदी ५ संवत् १६३३ को

पाँच सहस्र सेना भेजी। इस सेना के साथ आसिफ़ख़ां मीर-बख्शी, ग़ाज़ीख़ां, सैयद अहमद, सैयद हाशिम, राय लूनकरण आदि सरदार भी थे। टाड साहब ने लिखा है कि इस लड़ाई में शाहज़ादा सलीम भी आए थे परन्तु यह भ्रम है, शाहज़ादा सलीम उस समय केवल ७ वर्ष के थे।

यह लड़ाई हल्दी घाटी की लड़ाई के नाम से प्रसिद्ध है।

ग्वालियर के राजा रामसिंह का एकलौता बेटा इस लड़ाई में मारा गया, परन्तु इससे उक्त राजा दुखी न होकर और भी उत्साह के साथ लड़े तथा काम आए, और ग्वालियर के राजसिंहासन को अनाथ छोड़ गए।

राणा ने अपने घोड़े चेतक को मानसिंह के हाथी पर कुदा कर बरछी मारी, परन्तु वह वार ख़ाली गया। हौदे को तोड़ कर बरछी महावत को लगी और महावत मारा गया। फिर तो बादशाही फ़ौज इन पर टूट पड़ी और समीप था कि राणा मारे जाते परन्तु स्वामिभक्त झाला मानसिंह राणा के छत्र और झण्डे को लेकर एक ओर भागे। मुसलमानों ने समझा कि राणा उधर ही भागे जाते हैं, सब उसी ओर झुक पड़े और इधर अवसर पा राणा निकल गए। झाला मानसिंह अपने सब साथियों के साथ वहीं खेत रहे और ऐसी वीरता के साथ अपने स्वामी का प्राण बचाया। राणा ने इसके पलटे में उक्त झालाराना के वंशधरों को अपने दाहिने ओर स्थान दिया और आज्ञा दी कि ये लोग महल तक नक्कारा बजाते अपने छत्र और झण्डे के साथ आया करें।

राणा को भागते हुए पहचान कर दो मुग़लों ने उनका पीछा किया। परन्तु एक बरसाती नदी बीच में आ गई और राणा का घोड़ा चेतक बहुत घायल होने पर भी अपने स्वामी

को लेकर नदी फाँद गया। इधर इस असहायावस्था में राणा को देख कर उनके भाई सक्ता जी का भी भ्रातृस्नेह उमड़ आया और वे प्राचीन बैर भुलाकर उनके पीछे दौड़े, और जिस समय दोनों मुग़ल नदी उतरने के उद्योग में थे उनको ललकारा और दोनों को लड़कर मार गिराया। इस भांति राणा दूसरी बार जान जोखों से बचे।

चेतक, ज्यों ही राणा उससे उतरे, गिरकर मर गया। राणा ने उसके मरने पर बड़ा शोक किया और उस स्थान पर एक चबूतरा बनवाया। प्रायः स्वयं वहां जाया करते थे।

टाड साहब के लेखानुसार यह लड़ाई मिती सावन बदी ७ संवत् १६३३ को हुई थी और इसमें ५०० मनुष्य राणा के तथा ३५० तोमर (तुंवर) राजा रामसिंह ग्वालियरवाले के काम आए।

"अकबरनामे में लिखा है कि बादशाही फौज उखड़ चुकी थी और निकट था कि भाग खड़ी होती, परन्तु महतरखां ने चालाकी की, वह चन्दौल की फौज को दौड़ाए हुए आया और यह बात प्रसिद्ध की कि बादशाह आ पहुँचे, बस फिर सभों को साहस हो गया और राणा की सेना हताश होकर लौट पड़ी।

मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ जोधपुर ने महाराणा प्रतापसिंह का जीवनचरित्र बहुत खोज के साथ लिखा है। हम आगे का वृत्तान्त अविकल उन्हीं के ग्रन्थ से धन्यवादपूर्वक उद्धृत करते हैं।

"इस लड़ाई के पीछे महाराणा ने कुंभलमेर के किले में अपनी गद्दी जमाई जो उदयपुर से पश्चिम की तरफ पहाड़ों में परगने गोढ़वाड़ के ऊपर है और मैदान का तमाम मुल्क

जिसको बहुत करके मेवाड़ कहते हैं उजाड़ दिया और वहां के आदमियों को पहाड़ों में बुलाकर अजमेर मालवे और गुजरात के रास्तों पर लूट मार शुरू कर दी जिससे नाज और दूसरी व्योपार की चीजों का आना जाना बन्द हो गया और बादशाही लश्कर पर बड़ी तकलीफ गुजरने लगी। आसिफ़खां और मानसिंह से कुछ बन्दोबस्त न हो सका और इसकी शिकायत बादशाह के कानों तक पहुँची। मगर बादशाह का दिल उस वक्त बंगाले की तरफ लगा हुआ था क्योंकि वहाँ उनकी फौज पठानों से लड़ रही थी और वे खुद उसकी मदद के वास्ते सावन बदी २ को बंगाले की तरफ रवाना हुए। खुशनसीबी से उसी मिती को जो पच्चीसवाँ दिन गोघूंदे की फतह से था बंगाला फतह हो गया और बादशाह यह खबर सुन कर रास्ते से राजधानी में लौट आए। वहाँ से जाहिर में तो जियारत और असल में मेवाड़ के लश्कर को मदद पहुँचाने के लिये रवाने हो कर आसोज सुदी ७ को अजमेर पहुँचे। वहां सुना कि गोघूंदे के लश्कर में रास्तों की तकलीफों से नाज कम आया है और कुंवर मानसिंह ने राणा का मुल्क लूटने की मनाई कर रक्खी है इस सबब से गोघूंदे में बड़ी तकलीफ है। इसके सिवाय कुंवर आसिफखाँ में अनबन भी है। इस पर बादशाह ने लश्कर के अमीरों के नाम छड़ी सवारी से हाज़िर होने का हुक्म भेजा। जब वे हाज़िर हुए तो कुंवर और आसिफखाँ की ड्योढ़ी कई दिन तक बन्द रक्खी फिर कसूर माफ करके रूबरू बुलाया।

"इस अवसर में महाराणा ने सिरोही के राव सुरतान-देवड़ा, जालौर के खान ताजखाँ और ईडर के राजा नारायण दास को भी अपने में शामिल कर लिया और यह सब मिलकर

अरवली पहाड़ों के दोनों तरफ गुजरात के रास्तों पर लूट मार और फसाद करने लगे। बादशाह ने जालौर और सिरोही के ऊपर तरसूखाँ और रायसिंह को भेजा और वे दोनों सरदार डरकर अजमेर में बादशाह के पास हाजिर हो गए। तब बादशाह ने तरसूखां को पाटन की हुकूमत पर भेजा और रायसिंह को नाँदोत में रहने का हुक्म दिया जिससे महाराणा का गुजरात में आने जाने का रास्ता बन्द हो गया।

"अब बादशाह ने कातिक बदी ६ को अजमेर से गोघूंदे की तरफ कूंच किया और फौज को तो दो दिन पहिले से बकतर पाखर पहिना दिए थे। गोघूंदे पहुंच कर कुतुबुद्दीन, राजा भगवंतदास और कुंवर मानसिंह को तो पहाड़ों में महाराणा के ऊपर और कुलीचखां वगैरः को ईडर की तरफ भेजा और इनके साथ ही हाजियों के काफिले यानी संग को भी हलोदर की घाटी से गुजरात की तरफ रवाने किया और मेवाड़ के पहाड़ों में होकर ईडर पहुंचा। महाराणा और नारायणदास लूटने का काबू न पाकर एक तरफ हो गए मगर ईडर कातिक बदी १३ को फतह हो गया।

"फिर बादशाह गाजीखां वगैरः अमीरों को मोही में जो गोघूंदे से २० कोस है और अबदुलरहमान वगैरः को मदारिये में छोड़कर पूस सुदी ८ को बाँसवाड़े के रास्ते से मालवे की तरफ रवाने हुए। कुतुबुद्दीनखां और राजा भगवन्त दास जो हाजियों को गुजरात की सरहद तक पहुँचा चुके थे बगैर हुक्म आकर शामिल हो गए मगर उनपर खफगी हुई और कुछ दिन तक दरबार बन्द रहा।

"बादशाह उदयपुर होकर बाँसवाड़े को रवाने हुए। उदयपुर में शाह फ़खरुद्दीन और जगन्नाथ को उदयपुर के दर्रे यानी

दहवाड़ी की घाटी में राजा भगवन्तदास और सैयद अबदुल्ला खाँ को छोड़ कर लश्कर की अफसरी कुतुबुद्दीनखाँ की जगह आसिफखाँ को दे गए और बाँसवाड़े होकर कि जहाँ डूँगरपुर और बाँसवाड़े के रावल परताप और आसकरन हाजिर हो गए थे देपालपुर में पहुँचे और वहां कुछ दिन रहे।

''बादशाह के गोघूंदे की तरफ आने और पहाड़ों में होकर मालवे की तरफ जाने का एक मतलब यह भी था कि किसी तरह महाराणा भी दूसरे रईसों के माफिक उनके पास हाजिर हो जावें तो यह यात्रा सुफल हो जावे। मगर महाराणा तो ऐसी पट्टी पढ़े ही नहीं थे, उनको सब तरह से अपना नुकसान करना मंजूर था लेकिन बादशाह को सिर झुकाना हरगिज़ मंजूर नहीं था। और तो क्या एक भाट जिसको महाराणा ने अपनी पगड़ी दी थी जब बादशाह से मुजरा करने को गया तो उसने पगड़ी उतार हाथ में ले ली और नंगे सिर मुजरा किया। बादशाह ने सबब पूछा तो कहा कि यह पगड़ी राणा प्रतापसिंह की है जिसने कभी किसी हिन्दू मुसलमान को सिर नहीं झुकाया है, इसलिये मैंने भी उसका अदब रक्खा।

''बादशाह कम से कम ६ महीने के करीब महाराणा के मुल्क में और उसके आस पास रहे और उन्होंने महाराणा के तंग करने में भी कसर नहीं रक्खी, तो भी महाराणा ने कुछ पर-वाह न की और सलाम तक उनको नहीं कहला कर भेजा बल्कि हर तरह से उनको दिक करते रहे और जब देखा कि बादशाह उनके मुल्क से निकल गए तो पहाड़ों से उतर कर बादशाही थानों पर चढ़ाई करना शुरू किया और मेवाड़ की तरफ से आगरे का और बादशाह के लश्कर का रास्ता बन्द कर दिया जैसा कि मुल्ला अबदुलकादिर लिखता है कि मैं उस

वक्त बीमारी के सबब से वतन में रह गया था और बाँसवाड़े में से लश्कर में जाना चाहता था मगर हिंडोन में अबदुल्लाखां ने वह रास्ता बन्द और भयानक बता कर मुझ को लौटाया, तब मैं ग्वालियर सारंगपुर और उज्जैन के रास्ते से देपालपुर में जाकर बादशाह के पास हाजिर हुआ।

"इस अरसे में सुरतान देवड़ा भी बादशाह के लश्कर से भाग कर सिरोही में जा पहुँचा था और ईडर का राव नारायणदास भी फिसाद करने लगा था। बादशाह ने यह खबरें सुनकर माघ सुदी ७ को फिर राजा भगवन्तदास, कुंवर मानसिंह, मिरजाखां और कासिमखां वगैरः को गोघूंदे की तरफ भेजा और सुरतान देवड़े के वास्ते राय रायसिंह को और नारायणदास की बाबत आसिफखां को लिखा कि राय रायसिंह ने तो सिरोही और आबूगढ़ सुरतान से छीन लिया और आसिफखां के ऊपर नारायणदास को महाराणा ने मदद दे कर भेजा। वह ईडर से दस कोस पर पहुँच कर बादशाही थाने ईडर पर छापा मारना चाहता था कि आसिफखां ने फागुन सुदी ६ को सात कोस आगे जाकर मुकाबिला किया और लड़ाई में हरा कर भगा दिया; लेकिन राजा भगवन्तदास और मिरजाखां वगैरः से कुछ बन्दोबस्त महाराणा का न हो सका, वे उसी तरह थानों के ऊपर दौड़ते रहे। बादशाही अमीर उनके पकड़ने की बहुत कोशिश करते थे मगर उन तक पहुंच भी नहीं सकते थे और जब कि वे पहाड़ को महाराणा का ठहरना सुनकर घेरते थे तो महाराणा दूसरे पहाड़ से निकल कर छापा मार जाते थे। वे कभी एक जगह या किले में जम कर नहीं बैठते थे कि इसमें बाजे वक्त बहुत मुशकिल पड़ जाती है। हमेशा इधर उधर बादशाही अमीरों की देख भाल

में फिरा करते थे। इस दौड़ धूप का यह फल हुआ कि उदयपुर और गोघूंदे से बादशाही थाने उठ गए और मोही का थानेदार मुजाहद्‌बेग मारा गया।

बादशाह का दुबारा अजमेर में आना।

"अकबर बादशाह कातिक बदी १२ को मामूल के माफिक फिर अजमेर आए और अगली फौज से मेवाड़ में कुछ काम निकला हुआ न देखकर कातिक सुदी १५ को मेड़ते से फिर एक फौज महाराणा के ऊपर भेजी। उसमें अफसर तो वही राजा भगवन्तदास, कुंवर मानसिंह, पायंदाखां, मुगल सैयद कासिम, सैयद हाशिम, सैयद राजू असदतुर्कमान और गजरा चौहान वगैरः थे लेकिन बख्शी आसिफखां की जगह शहबाज खां को किया और इख्तियार भी कुल फौज का उसी को दिया। यह बड़ा चालाक अफसर था। इसने पहिले तो हाजियों के काफ़िले को जिसके साथ बहुत रुपया मक्के को भेजा गया था महाराणा की सरहद से पार उतार दिया और फिर बादशाही थाने देखकर सरहद के ज़ाबते के लिए बादशाह से और मदद माँगी। बादशाह ने शेख़ इब्राहीम फ़तहपुरी को कुछ फ़ौज देकर भेजा। उसके पहुंचने पर शहबाज़खां ने महाराणा से कुंभलगढ़ ले लेने का इरादा करके राजा भगवन्तदास और कुंवर मानसिंह को तो तरफदारी के वहम से बादशाह के पास जाने की सीख दे दी और फिर शरीफ़खां, गाज़ीखां और मिरज़ाखां वगैरः के साथ जाकर उस क़िले को घेरा। वैसाख*

* मेवाड़ में असाढ़ बदो १५ संवत् १६३५ मानते हैं। हमने वैसाख बदी १२ अकबरनामे में लिखी हुई तारीख १४ फरवरदीन से हिसाब करके

बदी १२ संबत १६३५ को महाराणा ने अंदर से लड़ाई की। मगर १ बड़ी तोप के फट जाने से किले का सामान जल गया।

"महाराणा लाचार किला छोड़कर बांसबाड़े की तरफ निकल गये मगर उनके नामी राजपूत पहिले किले के दरवाजे पर लड़े और फिर मंदिरों और घरों के आगे बहादुरी से मुकाबिला कर के काम आए। शहबाजखां गाजीखां को किले में छोड़कर महाराणा के पीछे रवाना हुआ। दूसरे दिन दोपहर को गोघूंदे में और आधीरात को उदयपुर में अमल किया और बहुत सा माल लूटा।

"मूता नेणसी की ख्यात में लिखा है कि अकबर की फ़ौज ने संवत १६३३ में कुंभलमेर फतह किया, सोनगराभान, अखेराजीत और कई चाकर राणा जी के मारे गए मालूम नहीं कि वह दो बरस की गलती संवत में क्यों है।

"महाराणा शहबाजखाँ को पहाड़ों में बहुत लिए लिए फिरे मगर हाथ नहीं आए। आखिर उसने थककर पीछा छोड़ दिया और पता लगाकर उनका डेरा लूट लिया। राय सुरजन हाड़ा का बेटा दूदा जो बादशाह से बागी रहा करता था और बरस दिन पहिले बादशाही लश्कर से लड़कर महाराणा के पास चला आया था, शहबाजखां के पास हाजिर हो गया। वह उसी को लेकर पञ्जाब में बादशाह के पास गया।

लिखी है। इससे २ महीने का फरक आता है; मगर फरबरदीन महीना कभी असाढ़ में नहीं आता, चैत बैसाख में ही आता है जब कि सूरज मेष राशि पर हो। शायद ऐसा हुआ हो कि लड़ाई बैसाख बदी १२ को शुरू हुई और किला असाढ़ बदी १५ को फतह हुआ।

अषाढ़ सुदी १३ संवत १५३५ को उसका मुजरा हुआ। बादशाह ने उसकी अरज से दूदा के कसूर बख्श दिए।

"शहबाजखां के जाने पर महाराणा बाँसवाड़े की तरफ से छप्पन के पहाड़ों में आए और बादशाही थानों को काटने लगे। बादशाह ने फिर पोष बदी १४ संवत ३५ को शहबाजखां और गाजीखां को भेज मुहम्मद हुसेन, शेख तेमुर बदख्शी और मीरजादा अलीखां और बहुत से अमीरों को साथ किया। महाराणा फिर पहाड़ों के ऊपर चढ़ गए। शहबाजखां फिर दो तीन महीने तक मेवाड़ में फिरा और थानों में हर जगह कारगुजार आदमी रख कर पीछे चला गया और जेठ सुदी १४ संवत १६३६ को बादशाह के पास पहुँचा और महाराणा को फिर अपने काम करने का मौका मिल गया जिससे कातिक बदी १३ संवत १६३६ को बादशाह खुद अजमेर में आए और सुदी १२ को पीछे जाने लगे। तब मुकाम साँभर से फिर शहबाजखां को सूबे अजमेर का बन्दोबस्त कायम रखने के वास्ते छोड़ गए। इससे पाया जाता है कि महाराणा ने मेवाड़ के सिवाय और जगह भी सूबे अजमेर में दस्तन्दाजी की थी।

"शहबाजखां ने फिर महाराणा का पीछा किया। इस दफे उनको बहुत मुश्किल पड़ी, खाना खाने तक की फुरसत नहीं मिलती थी। जिधर जाते थे दुश्मन पीछा दबाए चला आता था। एक दिन ऐसा हुआ कि पाँच दफे खाना छोड़ कर भागना पड़ा ऐसा विखा कभी किसी को नहीं हुआ होगा कि दुश्मन हरदम तलवार लिए हुए सिर पर खड़ा मिले और विखे का भुगतना भी महाराणा प्रतापसिंह का ही काम था कि जो ऐसी ऐसी कड़ी झेलते थे। बड़े लोगों ने जो यह बचन कहा है कि सूरबीर उसको कहना चाहिए कि जिसके

तेवर हार में भी न बदलें सो यह महाराणा प्रतापसिंह में अच्छी तरह से देखा जाता था कि हार पर हार होती थी और ज़मीन सब जाती रही थी तो भी लड़ने मरने ही पर तैयार रहते थे और दीन बचन मुँह से कभी नहीं निकालते थे। टाड राजस्थान में लिखा है कि एक दफे उनकी बेटी अपने हिस्से की रोटी आधी तो खा गई थी और आधी दूसरी बार के वास्ते रख छोड़ी थी कि एक बिल्ली आई और उसको खा गई जिसके वास्ते वह लड़की चिल्ला कर रोई। यह दुःख महाराणा से नहीं सहा गया और उन्होंने अकबर को लिखा कि मेरी तकलीफ़ कम करो। अकबर इससे बड़ी शेख़ी में आ गया और दरबार करके यह लिखावट सब को दिखाई। बीकानेर के राजा रायसिंह के भाई पृथ्वीराज * ने कहा कि यह किसी ने

---

* पृथ्वीराज के विषय में "भक्तमाल" में नाभा जी लिखते हैं—

नर देव उभै भाषा निपुन पृथ्वीराज कविराज हुव।
सवैया गीत श्लोक वेलि दोहा गुन नव रस॥
पिंगल काव्य प्रमाण बिबिध बिध गायो हरि जस।
परिदुख विदुख सलाघ्य वचन रसना जु विचारै॥
अर्थ विचित्रनि मोल सबै सागर उद्धारै।
रुक्मिणि लता वर्णन अनूप वागीश वदन कल्यान सुत्र॥

नर देव उभै भाषा—१४०

टीका। प्रियादास जी लिखित—माड़वार देश बीकानेर को नरेश बड़ो पृथ्वीराज नाम भक्तिराज कविराज है। सेवा अनुराग अरु नियम वैराग्य ऐसी रानी पहिचानी नाहि मानो देखी आज है। गयो विदेश तहाँ मानसी प्रवेश कियो हियो नहीं छुवै कैसे सर मन काज है। बीते दिन

राणा के नाम पर बट्टा लगाने के वास्ते जालसाजी की है। राणा को मैं जानता हूँ । वह कभी ऐसा हर्फ़ नहीं लिखेगा और फिर पृथ्वीराज ने महाराणा को इस हरकत से रोकने के वास्ते बहुत से चमतकारी दोहे बनाकर भेजे जिनके सुनने से महाराणा को १०००० घोड़े का बल हो गया सो हमारे समझ में निरी कहानी मालूम होती है, क्योंकि अकबर बादशाह की किसी तवारीख़ से भी नहीं पाया जाता है कि महाराणा ने कभी कोई ऐसी दरख्वास्त बादशाह से की हो। जो की होती तो अबुल्फ़ज़ल जिसने ज़रा ज़रा सी बात को

तीन प्रभु मन्दिर के दीठ परै पाछै हरि देखि भयो सुख को समाज है ॥५३०॥ लिखि कै पठायो देश सुन्दर स्वदेश यह मन्दिर न देख हरि बीते दिन तीन है । लिख्यो आयो साचुँ बाँचि अतिही प्रसन्न भये लगे राज बैठे प्रभु बाहर प्रवीन है । सुनी और एक यों प्रतिज्ञा करि हिय धरी मथुरा शरीर त्यागि करै रस लीन है । पृथ्वीपान जानि कै मुहीम भई काबिल की बल अधिकाई नहीं काल के अधीन है ॥ ५३१ ॥ जीवन अवधि रहे निपट अलप दिन कलप समान बीति पल न विहात है । आगम जनाइ दियो वाहे इन्हें सांचो कियो लियो भक्ति भाव जाके छायो गात गात है । चल्यो चढ़ि सांड़िनी पै लई मधुपुरी आनि करिके स्नान प्रान तजे सुनी बाल है । जय जय ध्वनि भई गई व्यापि चहुँ ओर अहो भूपति चकोर जस चन्द दिन रात है ॥ ५३२ ॥

बाबू शिवसिंह और डाक्टर ग्रिअर्सन साहब ने भी अपने ग्रन्थों में पृथ्वीराज का वर्णन किया है ।

श्री राधाकृष्णदास ।

बना बना कर लिखा है इसको राई का पहाड़ बना कर लिखता। मगर कहीं अकबरनामे में ऐसा ज़िक्र नहीं है जिससे यह बात साफ़ बनावट की मालूम होती है। हां, यह सही है कि जब शहबाज़खां का पीछा लेने से महाराणा के पांव उखड़ गए और उनको कहीं आस पास ठहरने के लिये जगह नहीं मिली तो वे मूंधा के पहाड़ों में जो आबू से १२ कोस पच्छिम में है जहां पहिले राणा मोकलसोजी भी विखे में रह चुके थे, चले गए। वहां देवल राजपूतों की बस्ती है। उन्होंने महाराणा की बहुत आवभगती की और लायाणे ठाकुर रायधवल ने जो सब देवलों में पाटवी था अपने पास कोई अच्छी चीज़ उनकी नज़र के लायक़ न देखकर अपनी बेटी उनको ब्याह दी और पहाड़ के ऊपर उनको बड़ी ख़ातिर और हिफ़ाजत से रक्खा। महाराणा ने वहाँ बाग लगाया और बावड़ी बनवाई जो अब तक मौजूद है।

"मूंधा पहाड़ पर रहने से मेवाड़ में फिर कुछ पता महाराणा का शहबाज़ख़ाँ को नहीं लगा और उसी अरसे में बादशाह का हुक्म उसके नाम पूरब में जाने के वास्ते आया जहाँ और बिहार के अमीर बाग़ी होकर फ़साद कर रहे थे। शहबाज़खां मेवाड़ से रवाने होकर आसाढ़ सुदी ६ संवत् १६३७ (मेवाड़ी १६३६) को फ़तहपुर में बादशाह के पास पहुंचा। महाराणा उसका जाना सुनकर अपने मुल्क में आने के वास्ते रायधवल से रुख़सत हुए। उस वक्त रायधवल की ख़िदमतों का इनाम देने के वास्ते उनके पास कुछ न था तो भी उसको राणा का खिताब देकर अपने बराबर कर लिया।

"बादशाह ने शहबाज़ख़ाँ की जगह रुस्तमख़ाँ को अजमेर का सूबेदार करके भेजा था। वह चार महीने में ही कछवाहों

के मुक़ाबिले में मारा गया। उसकी जगह मिरज़ाख़ाँ * मुक़र्रर होकर आया जो बाद को ख़ानख़ाना कहलाया। मालूम होता है कि यह महाराणा का दोस्त था और महाराणा की तारीफ़ में इसके बनाए हुए दोहे बहुत मशहूर हैं। इसने महाराणा से छेड़ नहीं की जिससे उनका जमाव अपने मुल्क में फिर हो गया और वे धीरे धीरे आगे भी बढ़ने लगे।

"मूता नेणसी ने लिखा है कि बैसाख सुदी संवत् ३८-३९ में महाराणा ने शेरपुरे का थाना मारा। यहाँ मिरज़ाख़ाँ की बेगम पकड़ी गई मगर महाराणा ने बहुत इज्ज़त और हुरमत के साथ पीछे मिरज़ाखाँ के पास भेज दी।

"राजप्रशस्ती में लिखा है कि कुंवर अमरसिंह मिरज़ाखाँ के कबीलों को पकड़ लाया था जब कि बादशाह उसको गोगूंदे छोड़ गए थे और महाराणा ने फ़ौरन उसको मिरज़ाख़ाँ के पास पहुँचा दिया।

"खैर कभी हुआ हो यह काम बड़ी भलाई का था जो महाराणा की तरफ़ से अपने दुश्मनों के साथ हुआ और शायद इस इहसान के बदले में ख़ानख़ाना ने वे दोहे महाराणा की तारीफ़ में बनाए हों।

"मिरज़ाख़ाँ संवत् १६३८ के पौष तक अजमेर के सूबे में रहा क्योंकि माघ सुदी ६ को जब कि बादशाह काबुल से फतेहपुर में पीछे आए थे अकबरनामे में उसका नाम दरबारियों में लिखा है और उस दिन नगर चेन में बखशियों ने बादशाह के हुक्म से उसको शहबाज़ख़ाँ के ऊपर खड़ा किया था। इससे शहबाज़ख़ाँ ने बुरा माना और अदूल हुक्मी करने को

* अबदुल रहीमखाँ खानखाना।

तैयार हुआ। बादशाह ने ख़फ़ा होकर उसको रायसाल दरबारी के पहरे में बिठा दिया।

"इससे मालूम होता है कि मिरज़ाख़ाँ माह में या कुछ पहिले अजमेर से चला गया था और फिर इस काम पर नहीं आया।

"मिरज़ाख़ाँ के जाने से महाराणा को और सुभीता हुआ। वे फिर अपना मुल्क दबाने लगे। हर एक थाने पर लड़ाई शुरू हुई, रास्ते बन्द हो गए। फिर बादशाह तक पुकार पहुंची, बादशाह ने इस दफे जगन्नाथ कछवाहे की अफसरी में फ़ौज तैयार की। बख्शीगीरी मिरज़ा जाफ़रबेग को दी। फागुन बदी १ को यह लोग रवाने हुए। सैयद राजू को मांडल में छोड़ कर महाराणा के ऊपर गए। महाराणा दूसरे घाटी से निकल कर मेवाड़ में आए और कई गांव लूट लिए। सैयद राजू लड़ने को गया तब चित्तौर की तरफ मुड़े। उधर से जगन्नाथ भी आ गया मगर राणा जी तो लड़ते मारते पहाड़ों में चले गए और कुछ अरसे पीछे फिर आए। यह फिर पीछे पड़े। एक दफे बहुत ही पास जा पहुँचे थे मगर महाराणा फिर भी हाथ न आए। तब यह पता लगाकर उनके क़बीलों के ऊपर गए जो एक बिकट जगह पर भीलों की हिफ़ाज़त में थे मगर महाराणा को खबर हो गई और वे उनको भी ले गए। ये गुजरात की सरहद तक पीछे गए मगर महाराणा का पता न लगा तब डूंगरपुर के रावल से जुरमाना लेकर लौट आए।

"ग़रज़ इसी तरह से जगन्नाथ भी दो बरस तक पहाड़ों में भटकता रहा फिर मजाहदबेग की बदली तो बादशाह ने इलाहाबाद के सूबे में कर दी और जगन्नाथ भी संवत् १६४२ में काश्मीर को चला गया।

महाराणा की फतह ।

"इस वक्त से महाराणा के दिन फिरे। बादशाह की फिर कोई फ़ौज नहीं आई। अकबरनामे में १२ बरस यानी १६५३ तक महाराणा का जिक्र नहीं आता है। सिर्फ उस संवत् में उनके मरने की खबर लिखी है। इतनी मुद्दत तक बादशाह के चुप रहने और फ़ौज नहीं भेजने का यह सबब था कि संवत् १६४१ से पंजाब में रहते थे और उनका ध्यान ज़ियादातर उत्तर और पश्चिम की तरफ था क्योंकि तूरान के बादशाह अब्दुल्लाखाँ उजबक से बिगाड़ हो गया था और अकसर खबरें उसके काबुल और हिन्दुस्तान के ऊपर चढ़ाई करने की उड़ा करती थीं।

"टाड राजस्थान में लिखा है कि महाराणा के ऊपर तकलीफ़ देखकर उनके पुश्तैनी दीवान् भीमाशा का जी जला और जो दौलत उसके बाप दादा की जोड़ी हुई चली आती थी वह सब उसने महाराणा के नज़र कर दी और महाराणा उस रुपए से घोड़ा और राजपूतों की सजाई करके बादशाही लश्कर पर जो दवेर में पड़ा था जा पड़े और उसको गाजर मूली की तरह से काट कर भागे हुओं के पीछे आमेट तक गए और उसी गरमागरमी में कुम्भलमेर के ऊपर हमला करके अब्दुल्ला और उसके लश्कर को काट डाला और फिर उसी तरह दुश्मनों के २२ थाने छीन कर उनको मार भगाया।

"मेवाड़ की तवारीख लिखने वाले कहते हैं कि एक ही साल यानी संवत् १६४२ की लड़ाई में तमाम मेवाड़ अजमेर चित्तौर और मांडलगढ़ के सिवाय दुबारा फतह हो गया और हिन्दूपति ने राजा मानसिंह और जगन्नाथ को बदला देने के लिये जो फूले फूले फिरते थे कि हमने महाराणा को कैसा

ख़राब कर दिया, आमेर के ऊपर हमला किया और उसके मालदार शहर मालपुरे को लूट कर ख़ाक में मिला दिया।

"महाराणा की बाकी उमर आराम से गुजरी क्योंकि १२ बरस तक फिर कोई चढ़ाई मुग़लों की नहीं हुई। इस मुद्दत में उन्होंने अपने उजड़े मुल्क को संभाला। उदयपुर को जो दुश्मनों की चढ़ाइयों से बसते बसते रह गया था नए सिरे से बसाया, सरदारों को जो विखे में साथ रहे थे बड़ी बड़ी जागीरें दीं और उनके दरजे और कुर्ब जियादे किए।

महाराणा का इन्तकाल।

"संवत् १६५३ में महाराणा का देहान्त हुआ। मिती मालूम नहीं हुई, न टाड राजस्थान में देखी गई, न मूता नैणसी की ख्यात में है। मगर अकबरनामे में लिखा है कि तारीख बहमन सन् ४१ जलूसी को राणा* कीका का जमाना खतम हो गया। उसके अधर्मी बेटे अमरा ने जहर खिला दिया और एक कड़ी कमान के खैंचने से भी झटका लगा था सो हिसाब लगाने से यह तारीख माघ सुदी पंचमी संवत्† १६५३ के मुताबिक होती है।

टाड राजस्थान में महाराणा के मरने का हाल इस तौर पर लिखा है।

"महाराणा की तमाम उमर विखे और लड़ाइयों में गुजरी उनका तमाम बदन ज़ख़मों से चूर था, वे ग़म और फ़िक्र के मारे जवानी में ही वृद्ध हो गए थे, उनके हाथ पाँव रात दिन

* अकबर बादशाह महाराणा प्रतापसिंह को कीका कहते थे।

† इस लिखने के पीछे हमको उदयपुरी एक मित्र की लिखावट से मालूम हुआ कि महाराणाका देहांत माह सुदी ११ को हुआ।

की दौड़ धूप से ढीले हो गए थे, कमजोरी से उनको तरह तरह की बीमारियाँ पैदा हुईं। उनके मरने की हालत भी उनकी बहादुरी साबित करती थी। उन्होंने अपने वली अहद को कसम दिलाई कि तुम हमेशा दुश्मन से लड़ते रहना और कभी लड़ाई से पीछे मत हटना। अमरसिंह ने क़सम खाई और बचन दिया तो भी महाराणा को तसल्ली न हुई क्योंकि वे जानते थे कि मेरा बेटा कभी आज़ादी और विखे की तकलीफों को न सह सकेगा और सबब ऐसा समझने का यह था कि महाराणा और उनके साथियों ने पीछोला झील के किनारे पर कई झोंपड़े डाल रक्खे थे जिनमें वे अपने विखे के दिन तै करते थे और अंधेरे और मेह में सिर छिपा कर बैठ जाते थे। राजकुमार अमरसिंह को यह ख्याल तो रहा नहीं कि झोंपड़ा बहुत नीचा है और उसका एक बांस बाहर को निकला हुआ है और वैसे ही निकल खड़े हुए मुड़ास डांड़े में अटका उसको वैसा ही ऐंचते हुए चले गए।

धीरे धीरे महाराणा ने जो अपने बेटे की यह जल्दबाजी देखी तो उनको बड़ा रंज हुआ और उन्होंने जान लिया कि वह कभी उन मेहनतों को नहीं झेल सकेगा जो दुश्मनों से लड़ने में आ पड़ती हैं।

"हिन्दूपति उस वक्त एक टूटे से झोंपड़े में थे और उनके सरदार जो बुरे वक्तों में आड़े आए थे सब उनके सिरहाने बैठे थे और उनके दम तोड़ने की हालत को बड़ी लाचारी, बेबसी और दुःख से देख रहे थे। जब बहुत देर हुई तो सलूमर के सरदार ने ठंढी सांस भर कर पूछा कि ऐसी क्या मुश्किल आपकी जान पर पड़ी है जो वह निकलती नहीं।

"महाराणा ने संभाला लेकर जवाब दिया कि मेरी यह

तसल्ली करो कि यह मुल्क मेरे पीछे कहीं तुरकों को तो नहीं दे दिया जावेगा। मैं उस झोपड़ेवाली कैफियत से अपने बेटे के मिजाज का हाल मालूम करके तो यही समझ रहा हूँ कि वह इनकी जगह बड़े बड़े ऊंचे मकान और महल बनवावेगा और उनमें आराम से बैठ जावेगा और मेवाड़ का स्वतंत्रपना कि जिसके वास्ते मैंने इतना खून बहाया है उसके हाथ से जाता रहेगा। क्या तुम लोग भी उसीके माफ़िक करोगे? सरदारों ने यह सुनकर बाप्पारावल के तख्त की क़सम खाई और कहा कि हम राजकुमार की तरफ से ज़ामिन होते हैं कि जब तक मेवाड़ की आज़ादी (स्वतंत्रता) दुबारा हासिल नहीं हो जावेगी हम कभी राजकुमार को महल नहीं बनाने देंगे और न आराम से बैठने देंगे।

"इस बात के सुनने से महाराणा को पूरी तसल्ली हो गई और फिर उनकी जान झट से निकल गई।

"टाड साहब कहते हैं कि उन मुल्कों के मालिक को कि जो उथला पुथली से बचे हुए हों सोचना चाहिये कि कितनी बहादुरी और सूरबीरपने का जोश इस राजपूत बादशाह में होगा। जिसने थोड़ी सी ही फौज और दौलत से ऐसे बड़े शाहनशाह का सामना किया जिसका लश्कर गिनती में उस दम (मेकदार) में ही कहीं ज्यादा था कि जो कभी ईरानी लोग यूनान के ऊपर चढ़ा ले गये थे।

"अरवली पहाड़ में कोई ऐसी घाटी नहीं है कि जहां महाराणा ने कोई काम बहादुरी का न किया हो। जिसमें उनको या तो फ़तह हुई या ऐसी शिकस्त कि जिससे उनकी और शान बढ़ गई हो और नाम भी हुआ हो। इन लड़ाइयों में से हल्दी घाटी और देवरकी लड़ाई ज्यादा मशहूर है।"

* श्रीहरिः *

राजस्थान-केशरी

अथवा

महाराणा प्रतापसिंह ।

छप्पय ।

प्रभु की बातहि टारि आपुनी बातहिं राखूं ।
हरि को शस्त्र गहाऊँ कै निज शस्त्रहि नाखूं ॥
पांडव दलहिं कँपाइ कृष्ण बच टारन भाखूं ।
चक्र धारि धावत लखि जीवन फल निज चाखूं ॥
इमि दृढ़प्रतिज्ञ लखि बीरबर धाए तुरतहिं चक्रलै ।
जय भक्तमानरच्छक सदा जादवपति जय जयतिजै १

(इति नान्दी)

(सूत्रधार का प्रवेश)

सू०। (चारों ओर देख कर) आहा ! संसार कैसा परिवर्तन-शील है ! क्षण क्षण पर इसका रूप बदलता रहता है। देखो क्या यह वही भारत भूमि है जिसमें एक समय लोग विमानों पर आकाश मार्ग में विहार करते थे, तपबल से ऋषिगण जिधर निकलते थे, प्रकाश हो जाता था। विद्या, कला, कौशल प्राणी मात्र में शोभा पाती थी अवश्य अब वे सब बातें दूर गई अब यह भारत वह भारत नहीं है, परन्तु क्या यह भारत वह

भारत ही नहीं है ? अथवा अब इसमें कोई शोभा ही नहीं है ? नहीं, ऐसा कदापि नहीं, यह भारत वही भारत है, इसमें सभी कुछ वर्तमान है परन्तु काल के प्रभाव से रूपान्तर अवश्य हो गया है, परन्तु वही भूमि, वही आकाश, वही मनुष्य, वही पशु पक्षी, सब वही हैं। उस समय की शोभा दूसरी थी इस समय की दूसरी, उस समय विमान पर लोग घूमते थे, इस समय रेल रूपी धूम्रयान पर, उस समय योगबल से ऋषिगण घर बैठे त्रिलोक के समाचार जान सकते थे, इस समय टेलीग्राफ़ द्वारा; उस समय सुन्दर रथों पर महारथी शोभायमान थे, इस समय डाइक्स की बड़ी २ फिटनें वेलर की जोड़ियां चौड़ी २ सड़कों की शोभा बढ़ाती हैं, उस समय सोने चांदी के रत्नजटित पात्र घर के गौरव को बढ़ाते थे, इस समय सुन्दर शीशे के ग्लास, रिकाबी आदि स्वच्छता की झलक दिखाते हैं। उस समय सोने चांदी के सिक्कों के रखने का स्थान न था इस समय काग़ज़ के सिक्के उड़ते दिखाई देते हैं, उस समय गली गली में वेदध्वनि प्रतिध्वनित होती थी, इस समय क़दम क़दम पर अंग्रेजी की धारा बहती है। निदान इस समय भारत की शोभा दूसरी ही चाल की हो रही है, शहरों में लम्बी चौड़ी हवादार सड़कें बन गई हैं, उन में लालटेनों की माला जगमगाती नगर की शोभा को चतुर्गुण करती है।

(परिपार्श्वक का प्रवेश)

परि०। मित्र ! आज तुम कौनसा पचड़ा लेकर बैठे हो ! इन निरर्थक बकवादों से क्या लाभ है ? देखो यह कैसा

भयानक समय उपस्थित हुआ है, चारों ओर से शत्रुओं ने आकर वृटिश गवर्नमेंट को घेर रक्खा है, नाना प्रकार के उपद्रव मच रहे हैं, हम लोग आदि काल से राजभक्त प्रजा हैं, क्या इस समय हम लोगों को हँसी खेल में मत्त रहना उचित है?

सूत्र०। भाई! यह तो तुमने ठीक कहा परन्तु हम लोग कर ही क्या सकते हैं और गवर्नमेंट को सहायता ही क्या दे सकते हैं?

परि०। क्यों नहीं, हम लोग बहुत कुछ कर सकते हैं। क्या तुमने इतिहासों को नहीं देखा है? तुम्हें विदित नहीं है कि प्राचीन कवि लोग अपनी वीर कविता से राजपूत योद्धाओं का उत्साह बढ़ा कर कैसे उमङ्ग के साथ लड़ा दिया करते थे?

सूत्र०। हाँ हाँ यह सब तो हम जानते हैं पर इससे क्या! हम कुछ कवि तो हैं हो नहीं कि युद्ध के समय उपस्थित रह कर वीरों का उमङ्ग बढ़ा सकें।

परि०। तुमने समझा नहीं। काव्य दे। प्रकार के होते हैं, एक दृश्य और दूसरा श्रव्य—दृश्य काव्य का जैसा शीघ्र असर होता है उसका अनुभव तो तुम्हें नित्य ही हुआ करता है, हमारी इच्छा है कि हम लोग ऐसे वीररसपूर्ण नाटक खेलें कि जिससे हमारे भारतीय वीरगण प्रोत्साहित हो कर अपने शत्रुओं से जो छोड़ कर लड़ें। भारत संरक्षण अकेले अंग्रेज़ों के किए कदापि नहीं हो सकता जब तक कि हिन्दुस्तानी योद्धागण उनके साथ अपना पराक्रम न दिखलावें, क्योंकि यह हिन्दुओं का देश है, हिन्दू प्रजा ही यहाँ विशेष रहती है और

सरकारी पल्टनों में भी हिन्दू ही विशेष हैं, अतएव आज किसी ऐसे राजपूत वीर का चरित्र दिखाना चाहिए जिसके नाम सुनने ही से भारतीय वीरगण प्रोत्साहित हो जाँय ।

सूत्र० । हाँ यह तो तुम्हारी सम्मति बहुत ही उचित है और इसीकी समग्र भारतवासियों को कमी है, क्योंकि वे अपने पूर्वजों के उदार चरित्र भूल रहे हैं; उनका स्मरण कराना आवश्यक है । परन्तु ऐसा कौन सा नाटक है ?

परि० । क्यों, मुद्राराक्षस, नीलदेवी, महारानी पद्मावती आदि कई एक नाटक हैं, जो इच्छा हो खेलो ।

सूत्र० । नहीं नहीं वे सब तो कई बेर खेले जा चुके, अब कोई नवीन नाटक खेलना चाहिए जो मनोरञ्जक भी हो और उत्साहवर्द्धक भी हो ।

परि० । आहा अच्छी याद आई, अभी हम लोगों के परम प्रिय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी के वात्सल्यभाजन बन्धु श्रीराधाकृष्ण दास ने महाराणा प्रतापसिंह का नाटक लिखा है; उसको खेलो । वह समयानुकूल है, क्योंकि एक तो वीरकेशरी प्रातःस्मरणीय प्रतापसिंह का पवित्र चरित्र, दूसरे जगत्प्रसिद्ध अकबर बादशाह का राजत्व वर्णन सभी को अच्छा लगेगा और अकबर के काल से अंग्रेजी काल में बहुत बातों में समानता भी है ।

सूत्र० । बस बस ठीक कहा, चलो शीघ्रता करो लोग उकता रहे हैं । (दोनों जाते हैं)

प्रथम अंक।

प्रथम गर्भाङ्क।

(स्थान-उदयपुर राजदरबार)

(महाराणा प्रतापसिंह, भीमाशा मंत्री तथा कृष्णसिंह आदि सरदारगण)

(नेपथ्य में)

जय जय भानु--वंश में भानु।
जासु प्रताप प्रकाशित जग में चहुँ दिसि भानु समान।
जाके हृदय सदा ही जागत सुभग आर्य कुल कान॥
सोई या डूबे भारत असि रच्छन को इक म्यान॥ १॥

प्रतापसिंह। हाय! मेरे हृदय में इस सिंहासन पर पैर रखते अग्निज्वाला सी भभक उठती है, यह राज्यसिंहासन कंटकमय प्रतीत होता है। मेरे प्यारे सरदारो! जिस दिन से हमारे पिता ने इस आसन पर पैर रक्खा उसी दिन से इसका पतन आरम्भ हुआ, इस उदयपुर का उदय हृदय को शोकाकुल कर देता है, हाय अम्बर, जोधपुर, बीकानेर आदि महाराज लोग आज दिन यवनों से घनिष्ठ सम्बन्ध करने और बेटी ब्याहने में अपने को धन्य मानते हैं और इसमें अपना गौरव समझते हैं और कहाँ तक, इस पवित्र सिसोदिया कुल के कलङ्क सक्ताजी ने भी अकबर के कृपापात्र हो कर सेवकाई स्वीकार कर ली है।

कृष्णसिंह। महाराज आप यथार्थ कहते हैं, एक मान संभ्रम ही में क्यों, खजाने की दशा भी तो शोचनीय हो रही है

भीमाशा। यथार्थ आज्ञा होती है अन्नदाता जी। खजाने की तो बात ही न पूछिए, आज कै कै बरस से इन दुष्टों के उपद्रव और लड़ाई से मालगुजारी एक पैसा नहीं मिलती, स्वर्ग सदृश मेवाड़ प्रान्त मानों जङ्गल हो रहा है।

प्रतापसिंह। ऐसी राज्यगद्दी से तो तापस वेष अच्छा! यदि यह बखेड़ा पीछे न लगा होता तो आज दिन हम एकान्त में भगवान् का भजन तो करते होते! अब तो साँप छछुन्दर सी गति हो रही है। हमने व्यर्थ इस गद्दी को कलङ्कित किया।

रामसिंह। महाराज, यह आप क्या कहते हैं? इस पवित्र वंश की महिमा स्वर्ग तक फैल रही है, बाप्पा रावल से लेकर आज तक इस गद्दी का नाम परमेश्वर ने रक्खा है। आप ऐसा जी न करें। सिंह के सिंह होते हैं। जिस समय आप कृपाणहस्त हो कर सिंहनाद करेंगे, ये सब गीदड़ जहाँ के तहाँ दबक रहेंगे।

प्रतापसिंह। यह ठीक है; पर समय फिर गया है। देखिए, चारों ओर म्लेच्छगण छा गए हैं, राजपूत राजा लोग इनके सम्बन्धी बनने में अपना अहोभाग्य मानते हैं। आपही के घर के सक्काजी ने उनकी वश्यता कर ली है! स्वदेशप्रेमी वीर राजपूतगण मन ही मन जल रहे हैं, ऐसे दुःसमय में कहिए क्या हो सकता है?

कृष्णसिंह। महाराज, आपका ध्यान किधर है? इन बातों को आप कभी स्वप्न में भी न विचारिए। परमेश्वर बड़े ही को बड़ा करता है, जिसके हाथ असि धारण करने की सामर्थ्य है, जिसका हृदय साहस और बल से पूर्ण है, जिसका मस्तिष्क स्वाधीन भाव से भरा है

उसी महापुरुष के सिर राज्य मुकुट शोभा देता है। उसके वीर दर्प के आगे किसकी सामर्थ्य जो ठहर सके? देखिये सिंह को मृगराज कौन बनाता है? गरुड़ को पक्षिराज का तिलक किसने किया है? और आपके पूर्वजों को इस राज्यासन पर किसने बिठाया है? केवल अपने बाहुबल से, अपने स्वाभाविक तेज से, अपने हृदय की दृढ़ता से। सूर्य का प्रकाश होने पर भी क्या दुष्ट चोर गण इधर उधर नहीं भागते? क्या प्रताप के प्रतापोदय होने पर ये दुराचारी खड़े रह सकते हैं?

मानसिंह। महाराज तनिक आँख खोलकर देखिए। इस समय स्वदेशभक्त प्रजा मात्र आपकी बाट जोह रही है; वीरों की दक्षिण भुजा बार बार आप ही के भरोसे फड़क रही है, सब एक दृष्टि आप ही की ओर देख रहे हैं, आपके उठने ही से फिर सब सामान एकत्र हो जायँगे! संसार में कीर्ति ही मुख्य है, शरीर का क्या है, यह तो नाशमान हई है। आप स्मरण करें किस महान वंश में आप का अवतार हुआ है। सिंह के बच्चे को क्या कोई शिकार करना सिखा सकता है? आप क्या अपने कुल का यह वाक्य भूल गए?

"जो हठ रक्खै धर्म को तेहि रक्खै करतार"

(नेपथ्य में)

सिसोदिया कुल साख, जान चहत बिन तुव उठे।
राखि सकै तो राख, यह अवसर पैहै न फिर॥

प्रतापसिंह। हैं! यह अमृत वर्षा किसने की?

चोबदार। धर्मावतार, कविराजा जी पधारते हैं।

प्रतापसिंह। आदर के साथ लिवा लावो।

(कविराजा का प्रवेश)

कविराजा। घणी खमा अन्नदाता—

गुणगाहक नरपाल, राजपूत कुल केशरी।
गो ब्राह्मण प्रतिपाल, तुव प्रताप दिन दिन बढ़ै॥

कृष्णसिंह। कविराजा जी, आप बड़े समय पधारे। इस समय इस राज्य की वर्तमान दशा पर विचार हो रहा था। ऐसे समय में आपका पधारना परम मंगलसूचक है।

कविराजा। महाराज, इस समय का विचार ही क्या? सुनिए—

जब लौं उगे न भानु तबहि लौं जग अंधियारो। जब प्रताप भयो उदय भयो मंगल जग सारो। जबहि धार असि हाथ सिंह सम टुक हंकारो। तबहिं शत्रु धड़ शीश आपुही ह्वैहैं न्यारो॥ शत्रु नारि सौभाग्य तजि विधवा लच्छन धारिहैं। बालक गण निज पितृ को तबही पिण्डा पारिहैं॥

खंडेराव। वाह कविराजा जी वाह, क्या अच्छी बात कही है, भविष्यत् का कैसा सुन्दर चित्र आंख के सामने खींच दिया है।

कविराजा। महाराज सुनिए पूर्वपुरुषों की कीर्ति सुनिए—

सूर्यवंश इक्ष्वाकु जगत में कीरति छाई।
प्रगटे पूरन ब्रह्म राम रावनहि नसाई॥
तिनके लव सुत भए शत्रु हति कीरति थापी।
बापा तिनके वंश जासु भय पृथ्वी कांपी॥
जनमे जंगल माँहि आइ चित्तौरहिं छीन्यो।
मोरि वंश परमार मार मेवारहिं लीन्यौ।
हिंदूपति हिंदूकुल सूरज नाम धारिकै

हिंदू जस की ध्वजा उड़ाई गगन फारिकै ॥
नवएँ भए खुमान पराक्रम जग में छायो।
काबुल लौं करि विजय मुहम्मद कैद बनायो ॥
समरसिंह भए समर सिंह भारत रखवारे।
पृथीराज सँग यवन जूझि सुरपुरी सिधारे ॥
कर्म देवि पति राज्य पुत्र सह रक्षन कीनो।
कुतुबुद्दिनहिं हराइ यवन मसि टीका दीनो ॥
करणसिंह तब यथा समय निज राज संभारयो।
ता सुत रावल महप तिनहिं झालोरे मारयो ॥
रहप सिंह झालोर मारि निज राजहि थाप्यो।
रावल नामहिं पलटि महाराणा जग छाप्यो ॥
रतन सेन या वंश आप संभ्रमहिं बढ़ायो।
अलादीन के दाँत तोड़ि निज धर्म बचायो ॥
ग्यारह पुत्र कटाइ बारहें अजय बचायो।
ठानि जहरव्रत नारि धर्म कुलधर्म रखायो ॥
अजयसिंह करि विजय केलवाड़ा बस कीनो।
मुंज अचानक अजय सीस में घाव जु दीनो ॥
सोइ जो लावै मुंज सीस युवराज हमारो।
तब पुत्रन प्रति यह आज्ञा महराज प्रचारो ॥
निज पितु शत्रु हराइ मुंज सिर हम्मिर काटे।
बैठे तब हम्मीर केलवाड़ा के पाटे ॥
मुहमद शा करि कैद चितौरहिं फेरि बसायो।
यवन दर्प दरि आर्य ध्वजा आकाश उड़ायो ॥
प्रबल पराक्रम खेतसिंह जब गादी पायो।
यवन मारि अजमेर जीत निज राज मिलायो ॥
जहाजपुर दक्षिण लौं जय करि राज बढ़ायो।

यवन सीस पग धारि बैर अपनो पलटायो ॥
लक्खो राणा सीस राजलक्ष्मी तब आई ।
लक्ष्मी चारों ओर मनहुँ छाई छितराई ॥
किए पहाड़ी प्रान्त आप बस रत्नखानि सह ।
सोना चाँदी रत्न अमोलक जड़े महल मह ॥
किले महल बहु बने राज श्री चहुँ दिसि राजे ।
फीके शत्रुहिं किए अटल सिर छत्र बिराजे ॥
प्रबल पराक्रम साथ पौत्र कुंभा जब बैठे ।
शत्रु हृदय दलमले कूर कायर घर पैठे ॥
कविकुल-मुकुट कहाइ नाम थिर जग में थापे ।
विजय कियो गुजरात यवन हिय भय सों काँपे ॥
याही कुल रानी मीरा जग कीरति छाई ।
गिरिधरलाल रिझाइ बहुत बिधि लाड़ लड़ाई ॥
राणा सांगा कीरति जग मैं को नहिं जानै ।
जाके असि को तेज शत्रु जिय सहजहिं मानै ।
बाबर को बावरो कियो रण स्वाद चखाई ।
कितेक राजा रावल रावत सिरहिं नवाई ॥
रत्नसिंह मेवाड़ रत्न निःसंक सदाई ।
पुर के फाटक रात दिवस राखे खुलवाई ॥
निज भुज बल नहिं घुसन दिए यवनन रजधानी ।
जिनके यश की सदा जगत में चली कहानी ॥
बिगत निसा भए उदय भानु खल लंपट लाजे ।
चहुँ दिसि छयो प्रताप सिंह लखि गीदड़ भाजे ॥
अब सोचन की बात कौन है शूर बीर गन ।
उठो उठो कटि कसो याद करि निज पवित्र पन ॥
जिनके नायक खुद प्रताप तिनको का संसय ।

जिनकी टेढ़ी भृकुटी लखि भाजत जग के भय ॥
जबलों जीवन देह तबहि लौं जग के झंझट।
आपु मुए जग परलय तासों सुनहु महा भट ॥
जब लौं घट में प्रान न तबलौं छूअन दीजे।
यवन सैन मेवारहिं लखि लखि हाथनि मीजै ॥
पिंजर बद्ध बिहंगम से परबस जीवन धिक।
जब लौं जीवन रहै दुःख नहिं होइ मानसिक ॥
अब बिलंब को काज नहीं असि बेग उठावहु।
निज प्रताप अब हे प्रताप अरिगनहिं देखावहु ॥
कोउ काज जग कठिन नहीं जो दृढ़व्रत धारो।
तातें हे नरव्याघ्र बेगि रन घोष प्रचारो ॥
आगो पीछो त्यागि होहु सब एक प्रेममय।
यह निहचय जिय धरौ धर्म जित जय तित निसचय ॥

प्रतापसिंह। (आवेश से खड़े होकर)

सुनो सुनो मेरे वीर सरदारो—
जब लौं तन में प्रान न तब लौं टेकहि छोड़ौं।
स्वाधीनता बचाइ दासता शृङ्खल तोड़ौं ॥
जो निज कुल मरजाद सहित जीवन तो जीवन।
नहिं तातें शत गुणित मरन रन में जस पीवन ॥
जो पै निज शत्रुहि मारि कै यह परतिज्ञा राखिहौं।
तौ या सिंहासन पै बहुरि पग धारन अभिलाखिहौं ॥

(पटाक्षेप।)

——(*)——

द्वितीय गर्भाङ्क ।

(स्थान–उदयपुर का किला ।)

(सैनिक गण ।)

१ सैनिक । क्यों भाई, कुछ तुमने भी सुना ?

२ सैनिक । कौन बात ?

१ सैनिक । सुना है चित्तौर उद्धार के हेतु दर्बार तयारी कर रहे हैं ।

२ सैनिक । उड़ती उड़ती खबर तो हमने भी सुनी है, भगवान श्री हजूर को सुमति दे कि जल्दी ही उधर की ओर रुख करें । भाई वीरसिंह, अब तो सही नहीं जाती ।

बीरसिंह । हम लोग तो उसी समय नहीं हटते थे पर क्या करें बड़े दर्बार ने माना नहीं, नहीं तो चित्तौर ले लेना इन लोगों को मालूम हो जाता ।

१ सैनिक । इसमें कौन संदेह था, देखो एक वीरवर जयमल अड़ गए तो दो घड़ी लग गई और जान पड़ा कि चित्तौर लेना कैसी टेढ़ी खीर है ।

बीरसिंह । जयमल और पुत्त ने संसार में अपनी कैसी कीर्ति छोड़ी ! हाय ! हम अभागे थे जो उस समय काम न आए ।

१ सैनिक । भाई मालिक को भी अकेला छोड़ना उचित न था। करते क्या ? अच्छा, क्या चिन्ता है, प्रतापसिंह के प्रताप का अब उदय हुआ ही चाहता है, अब ये कहाँ टिकते हैं । जैसे भगवान सूर्यनारायण के उदय होते ही चोर लंपट अन्तर्धान हो जाते हैं, देखना वैसे ही इनका उदय यवनों को नाश कर देगा ।

वीरसिंह। हाँ हाँ और क्या, अब वह समय पहुँचा ही चाहता है, सब लोग दृढ़ रहो, देखें कौन कहाँ तक वीरता दिखाता है।

१ सैनिक। अजी हम सब तयार हैं, प्राण रहते तो कोई हटते ही नहीं पर सिर कटने पर भी धड़ दे। एक को ले ही मरेगा।

वीरसिंह। देखो देखो श्री हजूर की सवारी इधर ही को आखेट को पधारती है। आओ हम लोग ऐसे गीत गावैं जिसमें और भी हमारे मालिक का उत्साह बढ़ै।

(सब सैनिक गाते हैं)

तजि सोच उठौ सब बीर बाँधि दृढ़ आसा।
अब भयो भानुकुल भानु प्रताप प्रकासा॥
दुखमय परबस की रैन अहो सब बीती।
दिन गए यवनगन जो चितौर गढ़ जीती॥
चलि बेगि लगाओ मसि उनके मुख चीती।
कसि कमर उठौ अब एक होइ करि प्रीती॥
सब भाजहिंगे लखि इनको तेज विकासा।
अब भयो भानुकुल भानु प्रताप प्रकासा॥ १॥
चलि शत्रुन के दल भेदि निसान उड़ावैं।
फिर चित्रकूट पर आर्य ध्वजा फहरावैं॥
आनँद सो सब मिलि नाचैं कूदैं गावैं।
स्वाधीन दिवस सब सुख सो सदा बितावैं॥
निर्द्वन्द होहु चित चाव बढ़ाइ हुलासा।
अब भयो भानुकुल भानु प्रताप प्रकासा॥ २॥

अपनी अपनी करतूति सबै दिखराओ।
लरि लरि अरि सैनहिं इत तें तुरत भगाओ॥
जड़ सों भारत तें इनके नाम मिटाओ।
फिर आर्य सुयश की नदी पवित्र बहाओ॥
करि कैं अब विजय मिटाओ जग परिहासा।
अब भयो भानुकुल भानु प्रताप प्रकासा॥ ३॥
परसन्न होइ परताप जबहिं प्रगटायो।
तौ विजय महूरत अब तुम्हरे दिसि आयो॥
चूकौ जिनि समयो ऐसो सुन्दर पायो।
तुम्हरे सिर राजत छत्र प्रताप सुहायो॥
उत्साह सहित उठि कीजै शत्रु विनासा।
अब भयो भानुकुल भानु प्रताप प्रकासा॥ ४॥

(सभों का प्रस्थान)

—:०:—

तृतीय गर्भाङ्क।

(स्थान—उदयपुर—अन्तःपुर)

(महाराणा विराजमान हैं)

महाराणा। कैसा कठिन समय उपस्थित हुआ है? जब से यहाँ मुसलमानों के क़दम आए सारा देश उजाड़ हो गया, ख़जाना खाली पड़ा है, खेत ऊसर हो रहे हैं, सारी श्री जाती रही, जिस वंश की उन्नत ध्वजा सदा आकाश भेद कर उड़ा करती थी, हाय! आज वह वंश भी अपनी आँखों से चितोरगढ़ में विजातीय शत्रुओं का निवास चुपचाप सहन कर रहा है। पितृचरण ने न जाने क्या और किस जीवन के लाभ से जीते जो चित्तौरडा छे

दिया और अपने शरीर में प्राण रहते भी शत्रुओं को प्रवेश करने का अवसर दिया। धन्य है वीरवर जयमल और पुत्त को कि जिन्होंने उस डूबती हुई मेवाड़ की कीर्ति के कुछ तो ठहरने का ठिकाना किया। आह! कैसी वीरता और साहस के साथ प्रबल पराक्रमी शत्रुओं का गतिरोध किया था। क्या उनकी अक्षय कीर्ति कभी लोप सकती है? ऐसे पुरुषरत्न क्या हमें सहायक मिलेंगे? जो दो चार वीर ऐसे साहसी हमें मिलें तो हम प्रतिज्ञापूर्वक मेवाड़ ही से क्या सारे भारत से इनको निकाल दें। पर क्या हुआ जो हमारे राज्य में इन्होंने प्रवेश किया है, हमारे हृदय पर तो हमारा पूरा अधिकार है? लाख लाख कठिनाइयों के पहाड़ गतिरोध करने को क्यों न खड़े हों परन्तु प्रताप के वेग को कौन रोक सकता है? यद्यपि इस समय राजस्थान के सब राजाओं ने स्वार्थ के वश होकर आत्मविस्मरण कर दिया है, इन विधर्मी शत्रुओं के साथ सम्बन्ध कर लिया है और यहां तक कि हमारे ही छोटे भाई ने अकबर से मित्रता कर ली है, परन्तु क्या इससे हम कभी हताश हो सकते हैं? कभी नहीं, यदि इन कुलांगारों को अपना प्रताप न दिखाया और इनकी इस नीचता के लिये लज्जित न किया तो मेरा नाम प्रतापसिंह नहीं। अपने पिता के लिये हम बहुत शीघ्र रामगङ्गा में स्नान करके प्रायश्चित्त करेंगे। हमारे हृदय में शक्ति चाहिये, हमारे हाथ में बल चाहिये फिर हमारे आगे कौन ठहर सकता है? देखो, हमारे वंश के मूल पुरुषों ने कैसे पराक्रम और साहस के कर्म किए हैं। भगवान श्रीरामचन्द्र जी ने अपने ही

बाहुबल से बानर और भालुओं का निमित्त मात्र सैन्य बना कर रावण ऐसे प्रबल शत्रु का विनाश किया था, बाप्पा रावल ने खुरासान तक विदेश में जाकर अपनी ध्वजा फहराई थी, खुमान ने काबुलियों का सारा कट्टरपन भुला दिया था, योंही बराबर एक से एक वीर होते ही गए, क्या उनके पवित्र कुल में जन्म धारण करके हम इस कुल को कलंकित करें? कभी नहीं. और फिर जैसी कठिनाइयाँ उन्हें झेलनी पड़ी थीं उनसे तो कहीं कम हमारे आगे हैं। हम तो अपने घर अपने स्वदेश प्रेमी वीरों के बीच में बैठे हैं। इन भुनगों को दूर करना हमारे लिये क्या बड़ा भारी काम है। भगवान् इस समय सानुकूल प्रतीत होते हैं। जिधर देखते हैं उत्साह दिखाई देता है. जिससे सुनते हैं उमङ्ग भरी बातें कान में आती हैं। क्या ऐसा अवसर चूकने योग्य है? कभी नहीं, और फिर ऐसे पराधीन निर्जीव जीवन से तो मरना ही उत्तम। या तो चित्रकूट गढ की ऊंची शिखर पर सिसोदिया कुल की पवित्र ध्वजा फहराती देख कर अपनी छाती ठंढी करेंगे अथवा अचल कीर्ति संसार में छोड़ कर अक्षय धाम का सिंहासन अधिकार करेंगे (आवेश में) प्रताप सिंह! तुझे अपनी जननी के दूध की सौगन्ध है जो प्राण रहते कभी इन म्लेच्छों के निकालने की चेष्टा में निरस्त हो। जो अपनी प्रतिज्ञा पालन कर सके तौ तो वीर माता का दूध पीना सफल है, नहीं तो ऐसे जीवन पर धिक्कार! अकबर अपने को बड़ा प्रतापी बड़ा चतुर, बड़ा वीर लगाता है, दक्खिन का राज्याधिकार करके उसे बड़ा गर्व हुआ है, राजपुताने के कुलांगारों को अपना

साला सुसरा बनाकर बड़ा फूला है, अपना राज्य अटल समझता है । परन्तु प्रताप ! तेरा नाम तभी है जब तू इस रावण सरीखे शत्रु का मुकुट अपने चरण तल में मर्दन करे । कुछ चिन्ता नहीं, जो इसका दर्प चूर्ण न किया तो संसार में अपना मुँह न दिखाऊँगा (नेपथ्य की ओर देख कर) अच्छे अवसर पर राज्यमहिषी आ रही हैं । इनके मन की थाह तो लें । देखें ये कितने पानी हैं ।

(राज्यमहिषी का प्रवेश ।)

रानी । आर्यपुत्र की जय हो ! क्या मैं सुन सकती हूँ आज आप की चिन्ता का क्या कारण है ?

महाराणा । भला तुमसे न कहेंगे तो किससे कहेंगे ? हम तो अभी तुम्हें बुलाने ही वाले थे, अच्छे अवसर पर तुम्हारा आना हुआ । हम इस समय यही सोच रहे थे कि इस कठिनाई के समय में हमें क्या करना उचित है ? क्या हम भी जयपुर की तरह अपनी प्राण से भी प्यारी बेटी को यवनराज की भेंट करके अपना झूठा साज बाज बढ़ावें और अपने बड़ों की कीर्ति को मिट्टी में मिलावें ?

रानी । महाराज कभी नहीं । आपको ऐसा कभी विचारना ही न चाहिए । ऐसा विचार भी करने से प्रायश्चित्त लगता है । बिचारी भोली भाली हिन्दुओं की लड़कियाँ अपना भला बुरा क्या जानें, उनका तो सुख दुख सब मा बाप के हाथ है, जो वे किसी लोभ में पड़ कर वा प्राण के डर से उनका सर्वनाश करते हैं तो न केवल अपनी कुल-मर्यादा को उल्लंघन करके संसार में अपयश के भागी होते हैं वरन् उन्हें परमेश्वर के यहाँ भी उत्तरदाता होना पड़ता है । मैं तो कभी अपनी प्यारी बेटी को म्लेच्छ कुलकलंक

की हवा भी न लगने दूंगी चाहे आप भी इसमें बुरा मानें तो मानें और फिर महाराज यह जीवन कितने दिन का। इस नाशमान शरीर की रक्षा के लिये अपने कुल को कलङ्कित करना कभी उचित है ? मैं तो स्त्री हूँ, मेरी तो छोटी बुद्धि है पर मेरी दो ही इच्छाएँ हैं या तो इन विजातीय शत्रुओं को मार कर महाराज के साथ चित्तौर राज्य सिंहासन की गौरव के साथ अधिकारिणी बनूं अथवा वीरदर्प से गिरे हुए महाराज के पवित्र शरीर को अपनी गोद में लेकर हसते हँसते भारत रमणियों का मुख उज्वल करके पतिलोक में आप से मिलूँ ।

महाराणा । साधु, महाभागे, साधु ! प्रतापसिंह की अर्द्धाङ्गिनी होने का अधिकार तुम्हारे अतिरिक्त किसको है ? तुम निश्चय रक्खो जब तक इस शरीर में प्राण हैं हम कभी इन म्लेच्छों की अधीनता स्वीकार न करेंगे ।

(धूलधूसरित राजकुमार का प्रवेश ।)

राजकुमार । (रानी को पीठ पर लपट कर तुतलाते हुए) मां ! दलबाल जवनों का छिकाल खेलने जांयगे ।

रानी (मुख चूम कर) हाँ, हाँ बेटा तुम भी ज़रूर जाना, अच्छा बताओ तो हमारे लिये क्या लाओगे ।

राजकुमार । भाई अमतो छहजादा को मालैंगे उछके गले की हीले की कंथी ले आवेंगे छो तुम को देंगे औल उछकी तलवाल दलबाल को देंगे और तोपी हम लेंगे ?

महाराणा । भला मुसलमान की जूठी टोपी तुम पहिरोगे ?

राजकुमार । काहे तुमी न कहते थे कि लाजा का मुकुत जूथा नहीं होता ?

(महाराज गोद में लेकर मुख चूमते हैं।)

(नेपथ्य में गान)

सबै मिलि सावधान अब होय। उदय होत भारत नभ सूरज तिमिर यवन कुल खोय॥ अपुने अपुने काज संभारहु तजि आलस सब कोय। करहु पवित्र शत्रु यवनन के रुधिर भूमि को धोय॥

महाराणा। ओह ! बड़ी देर हो गई। दरबार का समय हो गया। सुना है मानसिंह दक्षिण विजय करके आते हैं, उदयपुर भी रहने वाले हैं, उनके आतिथ्य का भार मंत्री को सौंपा है क्योंकि हम तो उस म्लेच्छप्राय हिन्दु कुल-कलंक का मुख नहीं देखना चाहते। [प्रस्थान]

इति प्रथम अंक।



द्वितीय अंक ।

प्रथम गर्भाङ्क ।

(स्थान दिल्ली, ज़नाना मीना बाज़ार, एक से एक चढ़ बढ़ कर तैयारी की दूकानें और उन पर रूपवती स्त्रियाँ सौदा बेचती हुईं। बड़े बड़े घरों की बहू बेटियाँ सखियों के साथ घूम रही हैं। अकबर एक ऊँची खिड़की से चिक की ओट में दिखाई देता है।)

(पृथ्वीराज * की रानी का प्रवेश और एक वृद्धा का उसके पास आगमन)

वृद्धा। बेटी तू किसी बड़े घराने की जान पड़ती है। जो तुझे बाज़ार की सैर करने की ख्वाहिश है तो आ मैं तुझे सैर करा दूं, क्योंकि बहुत बड़ा बाज़ार है, तू नाहक फिरैगी।

रानी। आप कौन हैं?

वृद्धा। ऐं, मैं इसी शहर की रहने वाली हूँ, कोई नंगी लुच्ची नहीं हूं। तुम डरो मत, तुम से मैं कुछ सवाल न करूँगी।

रानी। (मन में) जान पड़ता है इसी कुटनी के द्वारा अकबर अपनी घृणित इच्छा को चरितार्थ करता है। शकुन तो अच्छा मिला। आज यदि भगवान की कृपा होगी तो इन सभों को इसका मज़ा चखाऊँगी।

वृद्धा। (चटक मटक कर) ऐ बलैया लूँ; बेटी तू किस सोच में पड़ी है, मैं तुझे ऐसी ऐसी सैर कराऊँगी कि तू खुश हो जायगी।

---

* महाराज बीकानेर का भाई और अकबर का दरबारी सरदार।

रानी। नहीं नहीं और कुछ नहीं सोचती थी—आप की भलमनसाहत सोच रही थी (मन में) भला नानी देखें आज तू मुझे सैर कराती है या मैं तेरे बाप के साथ तुझे जहन्नुम की सैर कराती हूं।

वृद्धा। यह आप की मेहरबानी है, मैं किस क़ाबिल हूं (मन में) वह मारा अब कहाँ जाती है। आज का शिकार तो बहुत ही नफ़ीस है। आज भारी गठरी हाथ आएगी। (प्रकट) अच्छा हुजूर, अब इधर मुलाहिजा फ़र्मावें, यह जौहरिन की दूकान है, कैसे कैसे बेबहा जवाहिरात रौनक़बख्श हैं कि जिनको चमक से सारा बाज़ार खिल रहा है (हंस कर जौहरिन की ओर देख कर) और बी जौहरिन ने तो अपने याक़ूत लब गौहर दन्दाँ की आब के आगे सब को मात कर रक्खा है।

जौहरिन। (भौंह टेढ़ी करके) चल मुई बूढ़ी ख़ब्बीस, तुझे हरवक्त दिल्लगी सूझती हैं (रानी से) हुजूर देखें यह याक़ूत की अंगुश्तरी कैसी खूबसूरत है। यह हुजूर ही के क़ाबिल है (रानी अंगूठी लेकर देखती है।)

एक सखी। (वृद्धा से) क्यों बूआ, अब भी जो तुम्हें ये ज़ेवरात पहिरा दिए जांय तो क्या किसी से कम जँचो ?

वृद्धा। (प्रसन्न हो कर) अब क्या बेटी, जब हमारा ज़माना था तब था अब तो बूढे मुँह मुँहासे।

जौहरिन। नहीं नहीं ऐसा क्यों जी छोटा करती हो अब भी तुम्हारे क़द्रदान—

वृद्धा। (रानी से) ए हुजूर, जो लेना देना हो ले कर चलिए अभी बहुत बाक़ी है नावक़्त हो जायगा।

रानी। ठीक है [एक सखी से] यह अंगूठी लेलो।

[अंगूठी का दाम देकर सब आगे बढ़ती हैं]

वृद्धा। देखिए ये बजाज़िन की दूकान है और इस मनिहारिन को इधर मुलाहिज़ा फ़र्माइये। मुसौवरिन की दूकान पर कैसी कैसी खूबसूरत तस्वीरें आवेज़ाँ हैं, अहाहा-हा! यह देखिए हमारे बादशाह सलामत की तस्वीर है। ओ हो हो! कैसा शबाब है?

(रानी के मुंह की ओर देखती है।)

रानी। (घृणा नाट्य करती हुई मन ही मन) भला चढ्ढो देख जायगा तेरा यह शबाब (प्रकाश) यह सुन्दर चित्र किस स्त्री का है?

मुसौ०। हुज़ूर यह बादशाह की बेगम जोधाबाई की तस्वीर है।

रानी। यह वही कुलकलंकिनी है?

वृद्धा। (मन में) घबराइये न। अभी आप की भी क़लई खुली जाती है। (प्रकाश) ऐ हुज़ूर, वक्त नावक्त होता है, अभी हुज़ूर को बड़ी बड़ी सैर करानी है, एक एक दूकान पर इतनी देर करने से कैसे काम चलेगा?

मुसौ०। मर राँड़ मुँहजली, तेरे मारे किसी का भला काहे को होने पाएगा।

रानी। (हँस कर एक चित्र मोल लेकर आगे बढ़ती है)

(वृद्धा रानी को दिखाते ही दिखाते नेपथ्य की ओर चली जाती है।)

(पटाक्षेप)

द्वितीय गर्भांक।

(स्थान दिल्ली बादशाही महल के भीतर एक अंधेरा रास्ता; पृथ्वीराज की रानी की सखियां घबराई हुईं)

१ सखी। यह क्या अन्धेर हुआ, महारानी कहाँ चली गईं

कुछ पता नहीं लगता। यह ठग की बुड्ढी न जाने किधर महारानी को लेकर गुम हो गई। हाय! अब क्या करें?

२ सखी। हम सब तो बेमौत मारी गईं। अब महाराज को चल कर कौन मुँह दिखाएँगी?

३ सखी। अरे अभी तो हम लोगों के साथ थीं, इतने ही में वह निगोड़ी महारानी को लेकर किधर समा गई?

४ सखी। हा! हमारी सखी की कौन जाने क्या दशा होती होगी। हम लोगों ने साथ ही रह कर क्या किया?

५ सखी। महाराज जब सुनेंगे उनकी क्या दशा होगी? हम में से एक को भी जीता न छोड़ेंगे।

(व्याकुल हो कर इधर उधर घूमती हैं।)

(एक ख़वासिन का प्रवेश।)

ख़वासिन। तुम सभों ने क्या शोर मचा रक्खा है? जानती नहीं हो यह शाही महल है यहाँ अदब से रहना चाहिए?

१ सखी। हम सब अदब क्या जानें। इस समय तो हम लोगों का जी ठिकाने नहीं है। हमारी रानी का पता नहीं लगता। बहिन तुम जानती हो तो बताओ, बड़ा जस मानेंगी।

ख़वासिन। (मुस्करा कर) तुम्हारी रानी? तुम्हारी रानी इस वक़्त हमारी रानी बनी है। तुम लोग घबराओ मत।

२ सखी। चल लुच्ची! तुझे इस समय भी हँसी सूझती है? सच सच बता हमारी रानी कहाँ हैं?

ख़वासिन। (हँस कर और चमक कर) एँ तुम मानती ही नहीं हो तो हम क्या कहें? अच्छा अभी दम भर में देखना तुम्हारी रानी मालामाल यहीं पहुँचती हैं। यह

तो शाही महल है यहाँ का दस्तूर है कि ख़ाली आवे और भरी जावे (व्यंगपूर्वक हास्य)

सखियां। (रूखी हो कर) चल निगोड़ी, तेरा सत्यानाश हो। तेरी जीभ निकाल लें।

ख़वासिन। (हँस कर) तो तुम सब क्यों रश्क खाती हो, चलो न तुम सभों का भी बन्दोबस्त हम किये देती हैं। यह शाही महल है यहाँ कमी क्या है ?

(सब सखियाँ उसे पकड़ने को दौड़ती हैं और वह हँसती हुई भागती है।) (पटपरिवर्तन।)

तृतीय गर्भांक।

(स्थान बादशाही महल में एक सुसज्जित कमरा।)

(अकबर उत्कण्ठित भाव से इधर उधर घूमता और द्वार की ओर देखता है।)

(नेपथ्य में गान)

मधुकर काहे को अकुलात। खिलन चहत पंकज की कलियां अब न दूर परभात। यह पराग तेरे ही बांटे क्यों नाहक ललचात। छन ही में छकि प्रेम सुधा तू डोलेगो इतरात।

अकबर। हाय ! मैं इतना बड़ा शाहनशाह, मेरे यहां दुनियां के ऐशो इशरत के सामान मुहय्या, मगर मेरे दिल को एक दम भी राहत नहीं, शबोरोज़ फ़िक्र, लहज़ः बलहज़ः तरद्दुदात, रोज़ नई ख्वाहिशें, रोज़ नए हौसिले और हाय ! इन गुलबदनों की चाह ने तो मुझे पागल ही बना दिया। कितनी देर से कितने कामों का हर्ज कर के बावला सा यहाँ घूम रहा हूं मगर अब तक सिवाय हसरत के कुछ हाथ न आया (नेपथ्य में पैर की आहट

सुन कर) मालूम होता है बी नसीरन हमारे गुलेमुराद को लिये आ रही हैं। किसीने खूब कहा है—

"वादए वस्ल चूं शवद नज़दीक।
आतिशे शौक़ तेज़तर गर्दद ॥"

(द्वार खुल जाता है और वृद्धा का रानी का हाथ पकड़ कर खींचते हुए प्रवेश।)

वृद्धा। उम्रो दौलत की ख़ैर, तरक्क़िए जाहो हशमत, मुरादें भरपूर-लौंड़ी दुआगो अब रुख़सत की तलबगार है।

रानी। (वृद्धा को पकड़ कर) क्यों री हरामजादी यही सैर कराने लाई थी, अब चली कहाँ ?

वृद्धा। (हाथ छुड़ा कर मुस्कराती हुई) बेटा दम भर बाद इसी सैर को फिर जन्म भर तरसोगी।

(रानी वृद्धा को एक लात मारती है, वह गिर पड़ती है और उठ कर कमर पकड़े गिरती पड़ती बड़ बड़ करती जाती है।)

अकबर। (रानी के पास आकर) प्यारी, इधर आओ, ज़रा आराम फ़र्माओ, किस सोच में हो, देखो यह वह शाहनशाहे देहली जिसकी निगाह की कोर दुनियां के बादशाह देखते रहते हैं आज तुम्हारे क़दमों की गुलामी की ख्वाहिश करता हाज़िर है।

रानी। (मुंह फेर और रूखे स्वर से) देख अकबर, तू बहुत बड़े सिंहासन पर बैठा है। ऐसे दुष्कर्मों से इस राज्य-सिंहासन को कलुषित न कर और मुझे अभी मेरे घर पहुंचा।

अकबर। (रानी का हाथ पकड़ना चाहता है और रानी झटक कर हट जाती है।) ऐ जानेजाँ, इस नीमजाँ को अब न

सताओ, तुम्हारे इस जाँनिसार ने इसी वक्त़ तुम्हारी नाज़नी अदा पर जो कवित्त तसनीफ़ किया है उसको भी जरा सुन लो—

"शाह अकब्बर बाल की बाँह अचिन्त गही चल भीतर भौने ।
सुन्दरि द्वार ही दृष्टि लगाय के भागिबे की भ्रम पावत गौने ॥
चौंकत सी सब ओर बिलोकत संक सकोच रही मुख मौने ।
यों छबि नैन छबीले के छाजत मानो विछोह परे मृग छौने ॥

रानी । (क्रोध से) देख नराधम दिल्लीपति कुलांगार ! मैं राजपूत बाला हूं, मेरा अङ्ग स्पर्श न करना, नहीं अभी तुझे भस्म कर दूंगी ।

अकबर । (हाथ जोड़ कर) नहीं, नहीं, खफ़ा होने की बात नहीं है, देखो, यह नौलखा हार, यह बेशक़ीमत चम्पा-कली, यह बेबहा मोतियों का सतलड़ा, ये सब एक से एक उमदा जवाहिरात सब तुम्हारी नज़र हैं और यह दिल्ली का बादशाह हमेशः के लिये तुम्हारा ग़ुलाम है। आज अपनी ज़रा सी मेहर की निगाह से बादशाहत को बिला क़ीमत ख़रीद सकती हो ।

रानी । (लाल लाल आँखें निकाल कर और निर्लज्ज भाव से) क्यों रे नर पिशाच, तू मेरी बात न सुनेगा ? क्या तेरा काल ही तेरे सिर नाच रहा है ? क्या आज मुझीको नरपतिहत्या से अपना हाथ अपवित्र करना होगा ? सुन, मैं तेरी सब दुष्टता सुन चुकी हूँ और आज तेरे हाथ से निर्बोध राजपूत बालाओं के सतीत्व रक्षार्थ मैं तैयार हो कर आई हूं। तुझसे फिर भी यही कहती हूं कि अपने इस नीचता के काम को छोड़ और अपने कर्त्तव्य की ओर देख ।

(अकबर फिर रानी का हाथ पकड़ना चाहता है। रानी झपट कर अकबर को धरती पर पटक कर अपनी कमर से छिपाए कटार को निकाल अकबर की छाती पर बैठ क्रोध से हाँफती हुई)

रानी। ले नराधम, जो तू मानता नहीं तो आज तेरा यहीं निबटेरा किए देती हूं और तेरे बोझ से पृथ्वी को हलकी करती हूं। (कटार अकबर के गले के पास ले जाती है)

अकबर। (आर्त्तस्वर से) तौबा-तौबा-मैं हाथ जोड़ता हूँ मेरी बात खुदा के लिये सुन लो, मुझे न मारना, मेरी एक बात सुन लो—

रानी। कह, क्या कहता है।

अकबर। मैं अपने गुनाहों के लिये सख्त नादिम हुआ, मेरा कुसूर मुआफ़ करो, मेरी जाँ-बख्शी करो, मैं खुदा की क़सम खाकर कहता हूँ, मुझे मेरी उम्रे नातजुर्बाकार और दुनियावी यारों ने धोखा दिया, मैं अब तक इस पाकदामनी, इस बहादुरी, इस नेकचलनी को कभी ख्वाब में भी न सोच सकता था। मेरे ख्याल में औरतों का रक़ीक़ दिल तमः के फंदे से फाँसना आसान था। वह परदा आज दूर हुआ। मुझे बख़शिए। लिल्लाह मुझे बख़शिए। अब कभी किसीके साथ ऐसा गुनाह सरज़द न होगा।

रानी। मुझे तेरी बात का विश्वास कैसे हो? हाय! जिन राजपूत वीरों की सहायता से आज तुझे यह प्रताप प्राप्त हुआ है, रे कुलांगार, उन्हींकी बहू बेटियों पर हाथ डालते तुझे लज्जा नहीं आती! धिक्कार है तुझको!

अकबर। आप मुझ नापाक गुनहगार को जितना धिक्कार दें

बजा है, मगर याद रक्खें, यह हुमायूं का बेटा अकबर जब कि खुदायपाक के नाम पर आज अहद करता है अगर कभी फिर उससे यह गुनाह हुआ तो इस दुनियां में मुँह न दिखाएगा । अब मुझे ज्यादा न शर्माएं और मेरी जाँ बख़शी करें ।

रानी । देख, तू बड़ा बादशाह है । मेरे स्वामी ने तेरा नमक खाया है इस लिये तुझे आज छोड़ देती हूँ परन्तु समझ रख, तेरा राज्य केवल राजपूतों के बाहुबल से है । यदि आज पीछे कभी तेरी यह हरकत सुनने में आएगी, सारे राजपूताने में तेरे इस भेद को खोल दूंगी और एक दिन में राजपूत मात्र को तेरा बैरी बनाऊँगी ।

(अकबर को छोड़ देती है)

अकबर । (रानी के पैरों पर गिर कर) मैं आपके इहसान से कभी सुबुकदोश नहीं हो सकता । आपने न सिर्फ़ आज मेरी जाँ बख्शी की बल्कि मुझे बहुत बड़े गुनाह से बचाया । मेरे ऊपर जैसे इतना करम हुआ यह भी वादा फर्माया जाय कि यह भेद किसी से ज़ाहिर न किया जायगा और मेरा गुनाह मुआफ़ फ़र्माया जाय ।

रानी । मैं प्रतिज्ञा करती हूँ कि यह भेद किसी से न प्रकाश करूँगी । परन्तु मैं गुनाह मुआफ़ करनेवाली कौन ? उस करुणामय जगतपिता की सच्चे जी से क्षमा प्रार्थना कर, वही क्षमा करेगा ।

(अकबर घुटने के बल बैठ कर भगवान से क्षमा प्रार्थना करता है । रानी कटार लिए खड़ी है ।)

अकबर—

रहा मैं गुमराह जिन्दगी भर इलाही तौबा इलाही तौबा ।

चला न नेकी की हाय रह पर इलाही तौबा इलाही तौबा ॥
दी इस लिये मुझको बादशाही कि तेरे बंदों को पहुंचे राहत ।
वले किया मैंने ज़ुलम इन पर इलाही तौबा इलाही तौबा ॥
रहा लगा नफ्स पर्वरी में न दिल दिया दाद गुस्तरी में ।
पड़े मेरे अक्ल पर थे पत्थर इलाही तौबा इलाही तौबा ॥
बहाना ज़ालिमकुशी का करके किए बहुत मुल्क फ़तह हमने ।
वले किए जौर उनपः बदतर इलाही तौबा इलाही तौबा ॥
भला हो इस हूर पारसा का उठाया आँखों से जिसने परदा ।
हैं ज़िश्त एमाल मेरे एकसर इलाही तौबा इलाही तौबा ॥
हुआ है दामन गुनाह यों तर कि गर निचुड़ जाय वह जमीं पर ।
तो डूब जाऊँ मैं उसमें ता सर इलाही तौबा इलाही तौबा ॥
फ़क़त तेरे बख़शिशो करम का है एक भरोसा मुझे खुदाया ।
नहीं कोई और अब है यावर इलाही तौबा इलाही तौबा ॥
नज़र जो किर्दार पर मेरे की तो हो चुकी शक्र मुख़लिसी की ।
निगाह अपनी करम पः तू कर इलाही तौबा इलाही तौबा ॥ *

(धीरे धीरे पटाक्षेप ।)

चतुर्थ गर्भाङ्क ।

(स्थान दिल्ली—शाही महल का एक कमरा ।)

(अकबर का चिन्तित भाव से प्रवेश ।)

अकबर । हाय, मैं इतने दिनों तक किस तारीकी में था, इतनी उम्र किस गुनहगारी में बिताई, इलाही, इस अपने बंदे पर करम कर अब इस दिले बेचैन को सब्र अता कर ।

---

* यह गज़ल मित्रवर बाबू जगन्नाथ दास बी० ए० (रत्नाकर) की सहायता से बनी है ।

ख़ुदाया ! एवज न कर मेरे जुर्मों गुनाह बेहद का।
इलाहि तुझको गुफ़ूरुल रहीम कहते हैं ॥
कहीं कहैं न उदू देख कर मुझे मुहताज।
यह उनके बन्दे हैं जिनको करीम कहते हैं ॥"

अहा ! दरहक़ीक़त उसके बराबर कौन करीम है। अपने बन्दे को गुमराह देख कर आज इस पाकदामन औरत के ज़रिए से कैसी नसीहत दी। उफ़–बला की तेज़ी, ग़ज़ब की दिलेरी, कैसा खुदाई नूर था ! क्या यह वाक़िआ कभी भूलने का है? हर्गिज़ नहीं। अगर मेरी यह हरकत-इसी तरह जारी रहती और यह ख़बर बहादुर राजपूतों के कान तक पहुँचती, जरूर था कि हमारी सल्तनत पर ज़वाल आता। आहा ! उस जनाबेबारी की दर्गाह में किस ज़ुबाँ से शुक्रिया अदा करूँ? उसकी बेहद शफ़क़त का किस मुँह से बयाँ करूँ। आहा ! कैसे मुसीबत के वक्त में इस नाचीज़ की पैदाइश हुई ! ओफ़ ! उस संगदिल चचा की सख्ती क्या कभी भूल सकती है? ओफ़ ! उस वक्त खुदायपाक ने कैसी मुश्किलात आसान कीं ! फिर से यह तख्तो ताज बख़्शा, ख़ानबाबा की बग़ावत जिस वक्त याद आती है, दिल काँप उठता है, मगर वाह रे मुश्किल-कुशा, अपने इस बच्चे की बात उस वक्त कैसी रक्खी ! (कुछ ठहर कर) अहा हा, हिंदू मुसल्मानों के रिश्तेदारी की बुनियाद कैसी उम्दा डाली गई है। अगर इसमें पूरे तौर पर कामयाबी हुई तो ख़ान्दान तैमूरिया कभी हिन्दोस्तान से नहीं हट सकता। मगर वाह रे भगवान-दास, तेरे बराबर दूरन्देश कोई काहे को पैदा होगा ! हमारी पूरी चाल न जमने पाई। जो कहीं हमारे घर की

लड़कियाँ हिन्दुओं के घर जातीं तो सब काम बन जाता फिर तो इन्हें मुसलमान बनाने में कुछ भी देर न थी। मगर उस दानिशमन्द ने इस चाल को ताड़ लिया। अच्छा, कुछ मुज़ायक़ा नहीं, जाते कहां हैं। जो चाल चली है उसीकी तरक़्क़ी होने का नतीजा वह भी होगा। (कुछ सोच कर) यह हिन्दुओं का मुल्क है। यहाँ हिन्दू ही बसते हैं, इनकी बहादुरी का मुक़ाबिला दुनियाँ में कोई क़ौम नहीं कर सकती हालाँ कि इस वक़्त इन पर ज़वाल है मगर कब खुदा ताला किसको उरूज देगा इसका कौन ठिकाना? इसलिये जब तक इनके दिल से मुसलमानों से नफ़रत न दूर की जावेगी, जब तक इनके दिल में बिरादराना मुहब्बत न पैदा की जायगी तब तक मुमकिन नहीं कि मुसलमानी सलतनत को क़याम हो और यह तब तक मुमकिन नहीं जब तक कि मज़हबी जोश, मज़हबी ख़ियालात इनके मज़बूत हैं। मगर क्या बज़ोर शमशेर इनका मज़हबी ख़ियाल तबदील हो सकता है? हर्गिज़ नहीं—बल्कि ख़ौफ है कहीं उल्टी आग न भभक उठे। इसको मिटाने, इनको मुसलमान बनाने की अगर दुनियाँ में कोई तदबीर है तो यही कि इनसे नाता रिश्ता बढ़ा कर इनके दिल से अपनी तरफ़ से नफ़रत दूर करना, इनके मज़हब की तारीफ़ करना, इनकी मज़हबी तक़रीबों में शिरकत करके इनकी निगाह में खुद हिन्दू बन कर कुल परहेज़ों को दफ़ा करना। हाय, हमारे नाआक़बत अन्देश मुसल्मान भाई हमारी इस दूरन्देशी पर तो खियाल करते नहीं और हम्हीं से नाखुश होते हैं। हाँ—मगर मैं अपनी इस चाल को नहीं तबदील कर सकता। अकबर! अगर

तुझ पर खुदा की मेहरबानी हो और पूरी उम्र अता हो, तो तू साबित करके दिखला कि तैने मुसलमानी सल्तनत की मेख़ हिंद में किस क़दर मज़बूती के साथ गाड़ी है और इन काफ़िरों के मज़हब में दीन इसलामिया की बू किस तरह महः कर दी है ।

(एकाएक राजा टोडरमल का प्रवेश)

अकबर । (मन में) यह तो बड़ा गज़ब हुआ; जो कहीं इन्होंने हमारी गुफ्तगू सुनी होगी तो बड़ा बुरा हुआ । (प्रकाश) आइए राजा साहब, आज इस वक़्त आप कहाँ ?

टोडर । खुदावन्द, फ़िदवी एक ज़रूरी अम्र में गुज़ारिश करने की ग़रज़ से हाज़िर हुआ है ।

अकबर । फ़रमाइए ।

टोडर । जहाँपनाह हुजूर के साया में रऐयत निहायत अमनो अमान से है और शेर व बकरी एक ही घाट पानी पीते हैं, अगर इसे रामराज्य कहें तो भी मुबालिग़ा न होगा, मगर अफ़सोस की बात है कि मुसलमान भाइयों के दिल से तअस्सुब रफ़ा नहीं होता और वे रोज़ नए फ़िसाद उठाते हैं । सुनने में आया है कि खि़लाफ़ हुक्म बन्दगानेआली आज फिर कुछ शूरा पेश है जिससे लोग ख़ौफ़ज़दा हो रहे हैं ।

अकबर । राजा साहब, मैं इन अपने भाइयों की नादानी से सख़्त परेशान हूँ । आप देखिये, वालिदा माजिदा की वफ़ात में अगर मैंने बाल बनवाए तो क्या बेजा किया ? मगर इन सभों ने कैसा वावैला मचाया । चाहे कोई खुश हो या नाखुश, मैं तो हिन्दुओं के मज़हब का क़ायल हूँ । जहाँ तक मैं हिन्दू वेदान्त शास्त्र में डूबता हूँ एक अजीब

लुत्फ़ हासिल होता है। मुझे तो अपने क़ौम का मुतलक़ एतबार व भरोसा नहीं। मेरा तो दारोमदार आप ही जैसे रुकनेसल्तनत पर है। आप लोगों को तशफ़्फ़ी दें, मैं अभी आकर इन्तज़ाम करता हूँ। अकबर का हुक्म किस की मजाल है जो टाल सके।

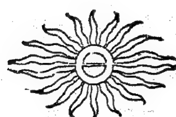
टोडर। ऐ शहनशाहे आलम, आप इतमीनान रक्खें, हिन्दू प्रजा का सर हुजूरआली के क़दमों में हमेशः हाज़िर है और आलीजाह, अपने बादशाह से बग़ावत करना तो हिन्दू क़ौम ने सीखा ही नहीं है। ताबेदार इस वक्त रुख़सत हो?

अकबर। हाँ आप चलें–मैं भी अभी आता हूँ (मन में) शुक्र है इन्होंने कुछ न सुना। अकबर का दिली इन्दिया किसीको मालूम होना दिल्लगी नहीं है।

(टोडरमल का प्रस्थान।)

(पटाक्षेप)

इति द्वितीयाङ्क।



तृतीय अंक।

प्रथम गर्भाङ्क।

(स्थान उदयपुर-महाराज मानसिंह का आतिथ्य-एक सुसज्जित कमरा-महाराज मानसिंह और कुंवर अमरसिंह बैठे हैं। भीमाशा मंत्री और सरदारगण खड़े हैं।)

(नैपथ्य में गान)

क्यों तू भरि गुमान इतरात।
इत उत चमकि फूलि निज छबि पै रे खद्योत इठलात॥
है दिन चारि साहिबी तेरी जब ही लौं बरसात।
तापै भानु समान होन को अरे मूढ़ ललचात॥
भानु उदय कहुँ देखि न परिहै कोउ न पुछिहै बात।
रविकुल रवि प्रताप के जागे रिपु कुल मानत मात॥

मानसिंह। (स्वगत) यहाँ के ढंग कुछ विलक्षण दिखाई देते हैं। यह सब बौछार हम्हीं पर है। अच्छा देखें यह अभिमान कब तक ठहरता है। (प्रकाश) आज हम पर राणा जी ने बड़ी कृपा की है और हमारे लिये बड़े सामान किए हैं; परन्तु अब तक आप क्यों नहीं पधारे?

मन्त्री। (हाथ जोड़ कर) हुकुम अन्नदाता जी आज श्री हुजूर का शरीर अच्छा नहीं है, कुंवर जी, तो पधारे ही हैं। उनमें और इनमें भेद क्या है, देखिए शास्त्रों ने भी कहा है "आत्मावै जायते पुत्रः"

मानसिंह। हाँ, आपका कहना एक प्रकार से अनुचित तो नहीं है पर संसार की जो रीति है वही बरती जाती है। यों तो शालिग्राम की बटिया क्या छोटी क्या बड़ी हमारे तो यह सिरताज ही हैं परन्तु जब तक श्री एक

लिङ्ग जी की कृपा से राणा जी वर्तमान हैं इनकी गिनती लड़कों ही में गिनी जायगी, और आप न पधार कर लड़कों को भेजना अपने घर में आए हुए मेहमान का अनादर करना है। आप हमारी ओर से राणा जी से बिनती कीजिये हमारी जो कुछ भूल चूक हो क्षमा करें और पधारें। जब तक आप न पधारेंगे, हम मुँह में ग्रास न देंगे।

मन्त्री। नहीं धर्मावतार, आपको ऐसा न समझना चाहिए। यह बात नहीं है। श्री जी हुजूर के माथे में दर्द न होता तो वे अवश्य ही पधारते।

मानसिंह। (दर्प के साथ मोछों पर हाथ फेरता हुआ) माथे में जिस कारण से दर्द है हम खूब समझते हैं। राणा जी ने अपने घर आए हुए हमारा अपमान किया पर हम अन्न का अनादर न करके उसे सिर चढ़ाते हैं (चावल के दाने पगड़ी में रख कर) याद रखना इस माथे के दर्द की दवा लेकर हम बहुत जल्द फिर आवैंगे और तब दिखावैंगे मानसिंह का अपमान करना कैसा होता है।

(चलने को उद्यत होते हैं।)

(प्रतापसिंह वेग के साथ आते हैं।)

प्रतापसिंह। सुनो महाराज मानसिंह—

जिन कुल की मरजाद लोभ बस दूर बहाई।
जीवन भय जिन खोइ दई आपनी बड़ाई॥
जिन जग सुख हित करी जाति की जगत हँसाई।
लखि जिनको मुख वीर सबै सिर रहे नवाई॥
तिनके संग खानो कहा मुख देखत हू पाप है।

जाइ सीस बरु धर्म हित यह सिसोदिया थाप है ॥

अच्छा अब आप सुख से पधारिए और अपने हिमायती के साथ शीघ्र ही फिर हमारी अतिथिसेवा रणक्षेत्र में स्वीकार कीजिए, यही प्रार्थना है।

(मानसिंह क्रोध के साथ राणा की ओर देखते हुए जाते हैं ।)

प्रतापसिंह । मंत्री—

यह पवित्र थल जेहि न विधर्मी छाया दरस्यो ।
ताहि आज या कुलकलंक नै पायन परस्यो ॥
तातें याहि धुवाइ शुद्ध गङ्गोदक छिरकौ ।
नाना विधि दै धूप वायु के मल कों हिरकौ ॥
हमहुँ सवत्सा गाय दान विप्रन को दैहीं ।
मुख देखन को पाप प्रायछित निज कर लैहीं ॥
अहो बीरगण निर्भय रहो सचेत सदाई ।
निज पवित्र पुरुषारथ को फल देहु चखाई ॥
रहै धर्म तौ प्रान नहीं जौ धर्म प्रान नहिं ।
कोउ न कहै नहिं रहे वीर छत्री भारत महिं ॥
बहु देसनि करि विजय व्याह अधमन की बाला ।
अकबर को मन बहकि रह्यो धन मद एहि काला ॥
गर्व खर्व करि थापि आपुनो हाँक तासु जिय ।
अहो बहादुर चूकौ जिन अवसर न हाथ दिय ॥
जहँ साहस जहँ धर्म जहाँ साँचे सब संगी ।
तहीं विजय निहचय तासों सब होहु इकङ्गी ॥

सब । महाराज ऐसा ही होगा ।

(पटाक्षेप)

द्वितीय गर्भांक।

(स्थान उदयपुर—राणा चिन्तित भाव से बैठे हैं और पुरोहित सामने बैठे हैं।)

प्रताप। पुरोहित जी! कल का वृत्तान्त तो आपने सुना ही होगा, अब बहुत शीघ्र मेवाड़ में समराग्नि भभकना चाहती है।

पुरोहित। हुकुम अन्नदाता जी, मैंने सब सुना। मुझे तब से बड़ी चिन्ता है।

प्रताप। चिन्ता किस बात की है, क्या आप प्रतापसिंह को निरा असमर्थ समझते हैं?

पुरोहित। नहीं अन्नदाता जी, मैं ऐसा कभी नहीं समझता, परन्तु मुझे इस लड़ाई में देश की महान् दुर्दशा दिखाई पड़ती है, इससे मैं निवेदन करता हूँ कि अब भारतवर्ष में मुसलमानों की जड़ ऐसी जम गई है कि इसे निर्मूल करना कठिन ही नहीं वरञ्च असम्भव है, फिर व्यर्थ बैठे बिठाए देश को उजाड़ करने से क्या लाभ? अब हमारा उनका चोली दामन का साथ है, अब तो ऐसे उपाय करने चाहिए जिनसे आपस में भ्रातृभाव बढ़े।

प्रताप। पुरोहित जी! आपका कहना ठीक है पर आप ने इसका पूरा वृत्तान्त नहीं सुना है इसीसे ऐसा कहते हैं नहीं तो कदापि ऐसा न कहते। प्रतापसिंह क्षत्रिय सन्तान है—क्षत्रियों का यह काम नहीं है कि व्यर्थ परमेश्वर की सृष्टि को नाश करे और उसके आगे अपराधी बनै, दूसरे हम लोग हिन्दू हैं, हम लोगों का धर्म अत्यन्त उदार भावपूर्ण है, प्राणी मात्र की रक्षा करना

हमारा धर्म है, फिर यह क्योंकर सम्भव है कि हम ईर्षावश विधर्मी लोगों का नाश करें। क्या वे लोग उसी जगत्पिता के सन्तान नहीं हैं? परन्तु महाराज, हमारे क्रोध का कारण दूसरा ही है। हमारा यह कर्त्तव्य अवश्य है कि हम अपने धर्म और अपने देश की रक्षा करें। जब कोई हमें छेड़ेगा हम कभी चुप नहीं रह सकते। देखिये हमारे पुरुषों ने जिस चित्तौरगढ़ के लिये निःसंकोच अपना प्राण अर्पण किया, जिसका गौरव अपने प्राण से बढ़ कर पुत्ररत्न को गँवा कर भी नष्ट नहीं होने दिया, उसी चित्तौरगढ़ पर-उसी परम पवित्र आराध्य चित्तौरगढ़ पर मुसलमानी झण्डा फह-राय और हम उसे सुख से देखें! हमारे आर्य भाइयों को मुसलमान बनावें और हम आँख बन्द कर लें?

पुरोहित। धर्मावतार, यह आप ठीक आज्ञा करते हैं परन्तु जगदीश्वर को यदि यही अभीष्ट है तो हम लोग क्या कर सकते हैं? पृथ्वीनाथ, देखें श्रीमद्भागवत ही में आज्ञा हुई है कि इनके पीछे गोरांगों का राज्य होगा। फिर जब भारत के भाग्य में ऐसा ही लिखा है तो व्यर्थ बैठे बिठाए अपने ऊपर झगड़े खड़े करने से क्या लाभ?

प्रताप। पुरोहित जी, यह आप क्या कहते हैं? क्या यह समझ कर कि कल तो हमको मरना ही है आज ही से खाना पीना छोड़ देना उचित है? आप निश्चय रखिए अब जो आवेंगे इनसे अच्छे ही आवेंगे। एक यूरोप का विद्वान अकबर के दर्बार में है। अनुमान होता है गोरांग जाति का ही वह है, उसकी बड़ी प्रशंसा सुनने में आई है। वह दिन भारत के सौभाग्य का होगा जिस

दिन इन सभों के हाथ से यह राज्य निकल जायगा, परन्तु क्या यह सब सोच बिचार कर आज ही से हमको निराश होकर अपने राज्य को कौन कहै अपने धर्म को भी उसे सौंप देना चाहिये? क्या आप आज्ञा देते हैं कि उसकी प्रार्थनानुसार राजकुमारी का विवाह उसके बेटे के साथ कर दिया जाय?

पुरोहित। हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, ऐसा भी कभी हो सकता है? उस दुष्ट की इतनी बड़ी स्पर्द्धा है? महाराज, उसे तब तो अवश्य ही समुचित दंड देना चाहिए।

प्रतापसिंह। गुरुदेव,

जेहि मुख तें ये बैन भरे अभिमान निकारे।
सिसोदिया कुल करन कलंकित बचन उचारे॥
करि बंश क्षत्रिय कुल कलंक ह्वै चार बिचारे।
बढ़ि बढ़ि बोलत जौन आजु सब शंक निवारे॥
जबलौं तिनको मसलि नहिं तुव पद गेंद बनाइहौं।
तबलौं हे गुरुदेव नहिं सुख सों दिवस बिताइहौं॥

पुरोहित। अन्नदाता जी, आप सब कुछ कर सकते हैं। श्री एकलिंग जी आप पर प्रसन्न हैं। हमारी इच्छा है कि हम लोग सब से पहिले एकलिंग जी की सेवा में यह सब निवेदन करके इस उपलक्ष में आज पूजन करें।

प्रताप। अवश्य, चलिए।

(दोनों का प्रस्थान।)

—:(*):—

तृतीय गर्भांक।

(उदयपुर के एक सुन्दर उद्यान में पुष्पित गुलाब के वृक्ष के निकट एक सुन्दरी खड़ी है और दूर पर एक कुञ्ज की ओट से एक युवा पुरुष अलक्षित भाव से अमृत-नेत्र से उसकी ओर देख रहा है*)

सुन्दरी। (एक फूल तोड़ कर)

अरे तेरे कोमल तन पर वारियाँ।
मधुर रंग माधुरी गंध पैं तन मन भई बलिहारियाँ।
झलक लखत वाकी तुव अंग मैं, मैं तो भई मतवारियाँ।
तुव मिलाप मैं कंटक जे वे, कसक कसक उर फारियाँ॥

अहा, गुलाब, तेरा रूप जैसा सुन्दर है नाम भी वैसा ही मनोहर है और मेरे जीवन का मूल कारण ही है। प्यारे गुलाबसिंह, देखो तुम्हारे वियोग के दिनों को इन्हीं गुलाबों के साथ काटती हूँ। येही मेरे आराध्य देव हैं। आहा, कहीं ये ही गुलाब गुलाबसिंह हो जाते।

युवा। (कुञ्ज की ओट से)

'या आसा अटक्यो रहै अलि गुलाब के मूल।
फिर बसन्त ऐहैं सखी इन डारन तरु फूल॥

सुन्दरी। (चकपका कर) हैं, यह अमृतवर्षा कहाँ से!

युवा। (कुञ्ज की ओट से)

अरे कोउ मधुकर की सुधि लेहु।
घायल तलफत प्रान गँवावत तेहि बिसारि जनि देहु।
रे मालति तुव बिरह भौंर भटकत बन बन तजि गेहु।
राखि लेत किन बरसि दया करि प्रेमसुधा घन मेहु॥१॥

---

* गुलाबसिंह और मालती के चरित्र से ऐतिहासिक कोई सम्बन्ध नहीं है।

सुन्दरी। वाह! यह तो वही स्वर जान पड़ता है जिसकी झंकार सदा मेरे हृदय में गूंजा करती है (युवा को कुञ्ज की ओट से निकल कर धीरे धीरे अपनी ओर आते देख कर घबराई हुई दांतों के नीचे उँगली दाब कर) हैं तो गुलाबसिंह ही। हाय, मैंने आज तक अपने हृदय के भाव को कैसी कठिनाई से छिपा रक्खा था, पर आज अनायास वह प्रकाश हो गया। अब क्या करूँ (लज्जा के साथ वस्त्र को सँभाल कर उँगली दाँत के नीचे दाबे दूसरे हाथ में लिए गुलाब की ओर नीची दृष्टि से देखती पुतली की भाँति, कुछ मुड़ कर खड़ी हो जाती है)

गुलाबसिंह। (सुन्दरी के पास आकर उत्कण्ठित भाव से) प्यारी मालती, अब कब तक भटकाओगी? हाय, तनिक तो जी में दया बिचारो!

मालती। (उसी भाव से) गुलाबसिंह, तुम क्यों दुःख उठाते हो? इस उद्यान में बहुत से सुन्दर फूल हैं, किसी और की ओर जी लगाओ, इसकी आशा छोड़ो।

गुलाबसिंह।

चातक स्वाती तजि कबौं अमृतहू परसै न।
ताकी गति जग और को जेहि मारे तुव नैन॥

मालती। (गुलाबसिंह की ओर फिर कर) गुलाबसिंह, मैंने बहुत चाहा था कि अपने जी के भाव को तब तक छिपाऊँ जब तक अवसर न पाऊँ, पर क्या करूँ आज दैवयोग से वह आप ही प्रकाश हो पड़ा। मैं क्या करूँ मेरी तो प्रेम और नेम के बीच में साँप छछूंदर सी

गति हुई । मैं क्षत्राणी हूं इससे अपनी प्रतिज्ञा से लाचार हूं और इसी से तुम्हें निराश होने के लिये कहती हूं ।

गुलाबसिंह । क्या मैं उस प्रतिज्ञा को सुन सकता हूँ ?

मालती । हाँ हाँ उसके सुनने के अधिकारी तुम्हीं तो हौ, सुनो—

प्रबल शत्रु दल दलि निज बल मेवार बचावै ।
म्लेच्छ रुधिर प्यासी भुव की जो प्यास बुझावै ॥
आर्य धर्म की धुजा गगन को भेदि उड़ावै ।
क्षत्रिय कुल मेवाड़ देश को नाम बढ़ावै ॥
ताकी सेवा करन मैं बड़भागिनि सुख पाइहौं ।
नहिं तौ यह जीवन सदा इकली बैठि बिताइहौं ॥

गुलाबसिंह । (आवेश से) अच्छा तो आज मैं भी जो प्रतिज्ञा करता हूँ उसे सुन रक्खो—

जबलौं निज बल को फल इनकौं नाहिं चखाऊँ ।
म्लेच्छ धुजा को काटि न जबलौं भूमि गिराऊँ ॥
आर्य धर्म की जय धुनि सों सब जग न कँपाऊँ ।
निष्कंटक मेवार देस जबलौं न बनाऊँ ॥
तब लौं मुख करि सामुहें तुमसों कबहुँ न भाषिहौं ।
अरु कोमल कर परस को मन में नहिं अभिलाषिहौं ॥

(वेग से जाता है और मालती अतृप्त नैन से उसकी ओर देखती है ।)

—(*)—

चतुर्थ गर्भांक।

(स्थान उदयपुर—राजपथ, गुलाबसिंह का चिन्तित भाव से प्रवेश।)

गुलाबसिंह। भूलि जिय काहू सों न लगै।
जबलैां रहै रहै निज बस को दूजे सों न पगै॥
पगै ते। वाही संग पगै जो अपुने रंग रँगै।
दई निरदई प्रेममई सों कबहूँ नाहि षगै॥
हाय! आज कितने दिनों की कितनी आशा और अभिलाषा के उसने एक दम में पलट दिया! प्यारी मालती! भला अपने इस व्याकुल प्रेमी की दो दो बातें तो सुन ली होतीं, इसके दुःखों की कहानी तो अपने कानों तक पहुंच लेने दी होती, जी भर के एक बेर देख ते। लेने दिया होता, तूने ते। ऐसी लट्ठ सी मार दी कि मेरे सभी हौसले पस्त हो गए (कुछ ठहर कर) और मैं ही धीरज धर कर दो दो बातें कर लेता तो क्या होता! पर हाय! मैं क्या करता, उसकी प्रतिज्ञा सुन कर मैं अपने आपे में तो था ही नहीं, कहता क्या और सुनता क्या! उस स्वाभाविक वेग के संभालना मेरे सामर्थ्य के बाहर था। अच्छा, अब जो हुआ अच्छा ही हुआ, अब तो प्रतिज्ञा की है उसे पूरी करने का उद्योग करना चाहिए।

(वीरसिंह का प्रवेश।)

वीरसिंह। यह आज आप बेपेंदी के लोटे की तरह क्यों लुड़कते फिरते हैं।

गुलाबसिंह। कुछ तो नहीं।

बीरसिंह। कुछ तो नहीं क्या? "कछु पिय सों खटपट भई टपटप टपकत नैन" का मामला दिखाई देता है—क्यों यार कैसा ताड़ा?

गुलाबसिंह। (हँसकर) तुम्हें सदा हँसी ही सूझती है—खटपट किस बात का?

बीरसिंह। यह जानो तुम—यहाँ तो सदा पौ बारह है।

गुलाबसिंह। अच्छा, अब यह मसखरापन रहने दो—हमारी इच्छा है कि आज दिल्ली चलें।

बीरसिंह। क्यों? क्या उधर से यह आज्ञा मिली है?

गुलाबसिंह। देखो, हर समय की हंसी अच्छी नहीं होती, यहाँ तो न जाने क्या बीत रही है और तुम मानते ही नहीं।

बीरसिंह। यह न कहिए-"जादू वह जो सिर पर चढ़ के बोले" मैंने तो पहिले ही कहा था।

गुलाबसिंह। तुम्हें हाथ जोड़ते हैं तंग न करो, यह बताओ तुम हमारे साथ दिल्ली चलोगे या नहीं?

बीरसिंह। सुनो भाई हम तो तुम्हारे साथ नरक में भी चलने को तैयार हैं, पर बिना तुम्हारा मतलब सुने न आप जायँगे न तुम्हें जाने देंगे।

गुलाबसिंह। मतलब क्या? तुम नहीं जानते कि महाराज मानसिंह यहाँ से चिढ़ कर गए हैं?

बीरसिंह। तो फिर, तुम्हें क्या?

गुलाबसिंह। अजी वहाँ जाकर एक की अट्ठारह लगावेंगे और न जाने क्या उपद्रव उठावेंगे, चलो आगे से उसकी ख़बर छिप कर ले आवें।

बीरसिंह। हाँ तो मैं चलने को तैयार हूँ (मन में) ऐसीही तो खबर लानेवाले थे, आज जान पड़ता है कि उधर से

मुंह की खाई तो जी में यही समाई (प्रगट) अच्छा तो जरा घरवाली से भी बिदा हो लूं।

गुलाबसिंह। हाँ हाँ, पर शीघ्र आना।

बीरसिंह। अभी आया, और तुम भी जरा उधर…(आँख मटकाता है)

गुलाबसिंह। चल लुच्चे—(ढकेलता है। एक ओर से बीरसिंह हँसता हुआ और दूसरी ओर से गुलाबसिंह कुछ अप्रतिभ सा होकर जाता है।) (पटाक्षेप)

॥ इति तृतीय अङ्क ॥



चतुर्थ अंक।

प्रथम गर्भांक।

(स्थान श्रीवृन्दाबन। तानसेन के पीछे पीछे भृत्यवेश में तानपूरा लिए हुए अकबर का प्रवेश।)

तानसेन। (अकबर की ओर फिर कर) जहाँपनाह, यह बड़ा ही ग़ज़ब कर रहे हैं।

अकबर। तानसेन ! चुप भी रहो, कोई जान लेगा तो फिर सब लुत्फ़ जाता रहेगा। आहा ! तानसेन, यहाँ तो कुछ जी ही और हुआ जाता है, ग़ैर मजहब होने पर भी यहाँ की मिट्टी में लोटने को बेतरह जी चाहता है और इन भोली भाली ब्रजवासिनियों की सहज बातें तो तान सुर को मात करती हुई जी को खींचे लेती हैं। (चौंक कर) वह देखो, मोर बोला और जी में कुछ और ही झलक सी झलकी।

तानसेन। खुदावन्द ! मैं हूज़ूर से ग़लत थोड़े ही अर्ज करता था, यह ज़मीन कुछ और ही है और फिर जब हुज़ूर मेरे गुरू जी महाराज श्री स्वामी हरिदास जी का दर्शन करेंगे उम्मीद है तबीयत ही दूसरी हो जायगी।

अकबर। भाई, उनके इश्तियाक़ने तो मुझे बावला ही बना रक्खा है। उन्हींके दर्शन के लिये तो यह सूरत बनाई है। (आगे की ओर देखकर) वह देखो चन्द ब्रजवासिनी गाती हुई जल भरने के लिये इधर ही की ओर आ रही हैं। वाह वाह क्या समा है ! धन्य ! ब्रजगोपिका धन्य !

(दोनों एक किनारे खड़े हो जाते हैं। कुछ ब्रजवासिनी सिर पर घड़ा लिए गाती हुई आती हैं।)

के ब्रजवासिनीगन—(गीत)

"माई री नेकु न निकसन पैये।
घाट बाट पुर बन बीथिन में जहीं तहीं हरि पैये।
उत सुनियत इत को चलियत हू मन वाही पै जैये॥
ब्रह्मदास छूटिए कहाँ लों कान्ह मई ब्रज मैये।

एक ब्र० ! अरी बीर !

दूसरी ब्र०। का कहै है बीर ! (सब जाती हैं)

पहली ब्र०-अरी नेक पाँय बढ़ाए चल। या ब्रज में ऊधमी को राज ठहरयो। कहूं काहू पै दीठ न परि जाय-सिद्दौसिये घर कूँ चल।

तीसरी ब्र०। हम्बे बीर-चल। (सब जाती हैं)

तानसेन—(विह्वल होकर) खुदावन्द ! इस ब्रजभूमि के रूप को हुजूर ने देखा ? धन्य है उन के भाग्य, जिन्हें ब्रजरज नसीब हो।

अकबर—तानसेन ! आज तुमने मुझ पर बड़ा इहसान किया। आज तुम्हारी बदौलत मुझ से नापाक बदबख़्त को भी ब्रजरज नसीब हुआ। धन्य है बीरबल को, जिनका काव्य ये ब्रजगोपिका गाती हैं।

तानसेन—इसमें तो शक नहीं। हुक्म हो तो ताबेदार इस वक्त हस्ब हाल कुछ सुनावै।

अकबर—जरूर-मैं तानपूरा छेड़ता हूँ

तानसेन—

"नैन माँगौं इन्द्र सों जासों दरसन करौं अघाय अघाय॥
रसना माँगि लेहुँ सहस फन सों जासों गोविन्द गुन गायो जाय॥

लंकपती सों सीस माँगि लेहुँ जो बन्दन करूँ बनाय बनाय।
सहसबाहु सों भुजा माँगि लेहुँ तानसेन के परसन कों पाय॥

(पटाक्षेप)

—o—

द्वितीय गर्भाङ्क।

(स्थान दिल्ली—राज्यपथ)

(एक हिन्दू और एक मुसलमान नागरिक का प्रवेश।)

मुस०। (हिन्दू को देखकर बड़े प्रेम से सलाम करके) अल्लाह भाई बिहारी लाल! आज तो बाद मुद्दत के मुलाक़ात हुई। कहिए सब खैरियत तो है।

हिन्दू। (प्रेमपूर्वक मुसलमान का कर स्पर्श करके) आप की दया से सब खैरियत है। क्या कहैं भाई मेहरअली! काम काज की भीड़ में छुट्टी तो मिलती ही नहीं, क्या करें कहाँ जाँय? अपनी खैरसलाह खैरआफ़ियत कहिए?

मुस०। (सलाम करके) शुक्र है-कहो दोस्त आजकल रोज़गार का क्या हाल है?

हिन्दू—भाई परमेश्वर इस मुसलमानी बादशाहत को क़ायम रक्खे और हमारे बादशाह सलामत को उम्र दें। इन दिनों जैसे आनन्द से दिन कटते हैं कुछ कह नहीं सकते। बेखटके खूब रोज़गार करते हैं और खूब बरकत होती है।

मुस०। इसमें तो शक नहीं-भाई साहब हमारा तुम्हारा तो चोली दामन का साथ है—अगर हमारे हाथ से तुम्हें कोई ईज़ा पहुँची तो तुफ़ है हम पर! चन्द नाआक़बत अन्देश बादशाहों ने तुम लोगों को कुछ ईज़ारसानी की थी, अब खुदा चाहेगा तो मुसलमानी सल्तनत में हिन्दुओं को बहुत आराम मिलेगा।

हिन्दू। परमेश्वर ऐसा ही करै-भाई हम लोग तो राजभक्त प्रजा हैं-हमारी यह इच्छा नहीं कि हम राजगद्दी पर बैठें, हम तो अपने राजा को चाहे वह कैसा हो क्यों न हो ईश्वर का अवतार ही समझते हैं। हाँ ज़रा हम से चुमकार कर बोलिए हम प्रसन्न हो जाँय, डाँट दीजिए हम मन ही मन मसूस कर रह जाँय, देखिए पण्डित-राज ने हमारे हज़रत सलामत के बारे में क्या अच्छा कहा है।

"दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा"

और हम लोगों का यही विश्वास भी है।

मुस०। भाई हमारे बादशाह सलामत तो तुम्हीं लोगों के भरोसे शाही करते हैं और तुम्हारे ही बल पर नाज़ाँ हैं, देखो आधे से ज्यादा वज़रा हिन्दू ही हैं; महाराज टोडरमल, महाराज बीरबल, महाराज मानसिंह, राजा मटह्रूशाह वग़ैरह कैसे कैसे दक्क़ाक़ और खैरख्वाह वज़ीर हैं, और लुत्फ़ तो यह है कि इनके हाथ से जो इन्साफ़ और फ़ैज़ मुसलमान रैयत को मिलता है वह मुसलमान वज़रा से नहीं। खुदा हम दोनों हिन्दू मुसलमानों की मुहब्बत यों ही ता अबद निबाह दे।

हिन्दू। तथास्तु, सुना है आज दर्बार में बड़ा जशन होगा, महाराज मानसिंह दक्खिन फ़तह करके आते हैं, चलिए न हम लोग भी ज़रा दर्शन कर आवैं।

मुस०। बिस्मिल्लाह तशरीफ़ ले चलिए।

(एक ओर से दोनों जाते हैं, दूसरी ओर से चारन के वेश में गुलाबसिंह और वीरसिंह का प्रवेश।)

गुलाबसिंह। बीरसिंह, दिल्ली की शोभा अकथनीय है, ऐसा सुन्दर और श्रीमान् नगर तो इस समय संसार में दूसरा कोई न होगा। यह चौड़ी सड़क, आकाश से बात करने वाले महल, मन को प्रसन्न किए देते हैं।

बीरसिंह। इसी लिये मैं दिल्ली नहीं आता था, मैं तो पहिले ही से जानता था कि कहीं आपका बिगड़ेल जी किसी महल में न मचल जाय, सो कुछ लक्षण दिखाई देने लगा।

गुलाबसिंह। तुम तो एक विलक्षण मनुष्य हो, कोई बात ही ऐसी न बोलोगे कि जिसमें व्यंग न हो।

बीरसिंह। अच्छा लो अब हम न बोलेंगे, हमारी बात तुम्हें नहीं सुहाती तो हम बोलेंहीगे नहीं।

गुलाबसिंह। (उंगली से दिखाकर) वीरसिंह, देखो वही वीर-वर पृथ्वीराज का कीर्तिस्तम्भ जान पड़ता है। हाय!

बीरसिंह। (मुंह फेर कर—चुप)

गुलाबसिंह। बीरसिंह इधर देखो।

बीरसिंह। (निश्चल)

गुलाबसिंह। हाथ जोड़ते हैं अब कुछ न कहैंगे ज़रा इधर तो फिरो।

बीरसिंह। (और भी हट गया)

गुलाबसिंह। सुनते हैा कि नहीं ?

बीरसिंह। (चुप)

(नेपथ्य में)

सावधान सब लोग होहु निज पथ अनुसारा।
मिले धूर में सहज जौन मरजाद टारा॥
देश देश बस करत बाहुबल अरिहिं चखावत।
दिल्लीपति मरजाद थापि मन मोद बढ़ावत॥

करि विजय शत्रुदल दलन करि मान महीपति आवहीं।
कर कुसुम लिये सुरबधूजन चढ़ि विमान जस गावहीं॥

गुलाबसिंह। जान पड़ता है महाराज मानसिंह दर्बार में जाते हैं। तो अब हम लोगों को भी शीघ्र चलना चाहिए।

(दोनों जाते हैं।)

(स्थान—शाही दर्बार)

(अकबर सिंहासन पर विराजमान है, दोनों ओर साफ़ा बांधे राज्यपारिषद्गण खड़े हैं। कई एक नर्तकी गान और नृत्य कर रही हैं, बड़ा प्रकाश और बड़ी तैयारी है)

बढ़े औज इस तख्त का या इलाही।
दुरख़शां रहे कौकबे बख्ते शाही॥
उदू होवें पामालो मग़लूब शह के।
पड़े उनके सर पर सरासर तबाही॥
रहे हुक्मरां सब का अल्लाह अकबर।
जहाँ में जहाँ तक कोई होवे राही॥
तेरे सायए फ़ैज़ से बहरःवर हों।
है मख़लूक जो माह से ता ब माही॥

अकबर। आज निहायत खुशी का दिन है, हमारे कूवते बाज़ू महाराज मानसिंह आज वह काम करके तशरीफ़ लाते हैं जो कि ख़ास हम भी शायद न कर सकते। सूबए दक्खन का फ़तह करना कोई दिल्लगी न थी, यह काम महाराज मानसिंह ही के हिस्से का था (दर्बारियों से) जिस वक्त महाराज तशरीफ़ लावें आप सब लोग उन्हें मुबारकबादी दें।

सब। बजा इर्शाद खुदावन्दे आलम।

अकबर। मगर देर बहुत हुई, महाराज की सवारी की ख़बर तो बहुत अर्सा हुआ आई थी!

(नेपथ्य में)

सावधान दिगपाल संभारहु निज दिसान कों।
हे नक्षत्र थिर रहौ सकल निज निज सुथान कों॥
अहो सिंधु मरजाद गहौ जौ चहौ मान कों।
हे अभिमानी बीर भगौ चाहौ जु प्रान कों॥
निज भुज बल जग बस करत कायर हृदय कँपावहीं।
विजय लच्छमी लुटत पद मान महीपति आवहीं॥

अकबर। वह महाराज आ गए।

चोबदार। (स्वर से) निगाह रूबरू जहाँपनाह सलामत।

(महाराज मानसिंह का प्रवेश।)

अकबर। (अर्धऽभ्युत्थान देकर) मुबारक महाराज, दक्खन की फ़तह आपको मुबारक।

(सब लोग इसीको दोहराते हैं।)

मानसिंह। (महा क्रोध के साथ पगड़ी को अकबर के सामने पटक कर कंपित स्वर से)

रहै मुबारक यह मुबारकी शाहनशाहा।
बढ़े औज शब रोज़ तख्त का जहाँपनाहा॥
दुश्मन हों पामाल आप के आली जाहा।
रैयत हो दिलशाद दुआगो ऐ नरनाहा॥
इस गुलाम नाचीज़ की ख़ता बख्श सब दीजिए।
रज़ा बख्श के अब हमें इज्ज़तबख्शी कीजिए॥

अकबर। (आश्चर्य और क्रोध के साथ खड़े हो कर) इसके मानी क्या हैं? महाराज, हम लोग आज आपकी

फ़तहयाबी पर कैसी खुशियाँ मना रहे हैं और आप ऐसे रंजीदः हो रहे हैं। फर्माइए तो किस नाकाम का काम आज पूरा होनेवाला है, जिसने सिंह की गुफा में जान बूझ कर हाथ डाला है?

कहिए तो दिल को आप के है किसने दुखाया।
खुद जान बूझ मर्ग को है किसने बुलाया॥
अकबर के तेग़ तेज़ को है किसने भुलाया।
नाम उसका हमें जल्द कहो बहरे खुदाया॥
उसको हम एक आन में पामाल करेंगे॥
उसके लहू से तेग़ के दामन को भरेंगे॥

मानसिंह। खुदावन्द, इस दुनियाँ में सिवाय अभिमानी प्रताप सिंह के और कौन जन्मा है जो हुजूर के ग़ज़ब से न डरता हो?

पृथ्वीराज। (मन में) सच है, सिंह का कान सिंह ही खुजलाता है।

अकबर। (मानसिंह को पगड़ी अपने हाथ से पहिरा कर) क्या प्रतापसिंह का दिल इतना बढ़ गया है कि उसने महाराज मानसिंह का अपमान किया? सच है, चींटे जी जब मौत आती है उसे पर जम जाते हैं। फ़र्माइए तो हुआ क्या?

मानसिंह। खुदावन्द, मैं दक्खिन से लौटने के वक़् उदयपुर के रास्ते आया। राणा ने बड़ी तैयारी के साथ मेहमानी की, मगर मेरी बेइज्ज़ती की ग़रज़ से खाने में खुद न शरीक हो कर अपने कुंवर को भेज दिया और जब मैंने खुद आए बग़ैर खाने से इन्कार किया तो बड़े तैश के साथ आकर बोले कि जिसने अपनी बहिन मुसलमान-

साथ ब्याही उसके साथ मैं कभी नहीं खा सकता।
(क्रोध से आँखें लाल हो जाती हैं।)

पृथ्वीराज। (मन में) धन्य प्रतापसिंह, धन्य! तुम्हारे सिवाय और किसमें इतना जात्याभिमान है?

अकबर। (क्रोध से काँपता हुआ) प्रताप की इतनी बड़ी जुरअत हो गई! उसको इस बात का ग़र्रा है कि अब तक उसकी लड़की इस ख़ान्दान में नहीं ली गई! ख़ैर (मुहब्बतखां की ओर) आप उदयपुर पर चढ़ाई का सामान बहुत जल्द करें, देखा जायगा प्रतापसिंह का कितना प्रताप है।

(एक चोबदार का प्रवेश)

चोबदार। (हाथ जोड़कर) खुदावन्द! दो परदेसी फ़र्यादी आए हैं, कहते हैं उन लोगों को उदयपुर के राणा ने लूट लिया है।

अकबर। हाज़िर लाओ।

(चोबदार का जाना और एक जौहरी तथा एक पोर्तुगीज़ फ़िरंगी को साथ लेकर आना।)

अकबर। तुम लोग कौन हो?

पोर्तुगीज़। खोडावंड, अम पोर्तुगीज़ है, अमारा नाम अगस्टाइन है। अमारा गोआ के गवर्नर ने अमको हज़ूर के लिये बहुट सा नजर लेकर भेजा ठा, राह में उडयपुर के राना ने अमको लूट लिया, बोला अमारे सिवाय बाडशाह कौन है, यह नज़र अमारा है।

जौहरी (हाथ जोड़कर) जहाँपनाह फ़िद्दी जौहरी है, बहुत से बेशक़ीमत जवाहिरात लेकर हुजूर को मुलाहिज़ा

कराने के लिये आता था। मैं यह समझ कर कि हुजूर के अहदेहुकूमत में किस की मजाल है जो शाही रऐयत पर आँख उठावेगा, बेखटके आ रहा था मगर रास्ते में उदयपुर के राणा ने मेरा सब माल लूट लिया। हाय! अब मैं क्या करूँ!

अकबर। तुम लोग घबराओ मत, अब उसका प्याला लबरेज़ हो गया, बहुत जल्द वह अपनी सजा पाएगा और तुम लोगों की हालत पर भी ख़ियाल किया जाएगा। (मानसिंह से) महाराज, बिहतर होगा कि आप भी मुहब्बत खां के साथ तशरीफ ले जाँय और उस नाबकार को उसके किर्दार का मज़ा चखाएँ।

मानसिंह। जो हुक्म खुदावन्दे आलम!

तब ही लों सब दाप, जब लौं दीठ न तुव फिरी।
कह बापुरो प्रताप, कोपे अकबरशाह जब॥

सब। आमीं, आमीं। (पटाक्षेप)

चतुर्थ गर्भाङ्क।

(स्थान-दिल्ली में पृथ्वीराज का घर)

(पृथ्वीराज, गुलाबसिंह और बीरसिंह आते हैं)

पृथ्वीराज। यहाँ का हाल तो तुमने छिप कर अपनी आँखों से देख ही लिया, अब तुरन्त उदयपुर जाओ और राणा जी को समाचार दो। यहाँ की फ़ौज पहुंची जानो। हमारी ओर से निवेदन करना कि सारे क्षत्रियों ने तो डुबा ही दी है, अब केवल मान मर्यादा आप ही के हाथ हैं, सो आप दृढ़ रहैं, कहीं से डिगैं नहीं। श्री एकलिंगजी की

कृपा से अच्छा ही होगा। और यहाँ मैं आप का सेवक हुई हूं, बराबर यहाँ के समाचार देता रहूंगा।

गुलाबसिंह। कुंअरजी, आप किसी बात की चिन्ता न करें। प्रतापसिंह क्षत्रिय वंश का नाम हँसाने न देंगे। उनके हाथ में शस्त्र ग्रहण की सामर्थ्य है। मैं अभी जाता हूं रात दिन चल कर पहुंचूंगा और आपका संदेसा ठीक समय से पहुंचाऊंगा, पर आप एक पत्र भी दें तो बहुत अच्छा हो।

पृथ्वीराज। अच्छा मैं पत्र लिख देता हूं। तुम कहीं रुकना मत, सीधे चले जाना। (पत्र लिखता है।)

बीरसिंह। भाई गुलाबसिंह, तुम दर्बार से सिपारस करके महाराज मानसिंह की मेहमान्दारी हमें दिला देना।

गुलाबसिंह। तुम क्या मेहमानी करोगे?

बीरसिंह। अजी देख ही न लेना, (हाथ से दिखाकर) यह बड़े बड़े तो बारूद के लड्डू खिलाऊंगा और आबे खंजर का जल पिलाऊंगा, जब पेट भर अघा जाँयगे खूब स्वच्छ चमकता हुआ तिलक करके हाथ में नारियल देकर बिदा करूँगा। (सब लोग हँसते हैं)

गुलाबसिंह। तुम्हें दिल्लगी ही की सूझती है।

बीरसिंह। अच्छा न सही, तुम्हीं उनकी ख़ातिरदारी करना। जिसमें दिल्लगी न हो सो करना।

पृथ्वीराज (पत्र देकर) अब आप लोग बिना बिलम्ब किए चले जाँय और खूब सावधान रहें।

(दोनों चलने को उद्यत होते हैं।)

(नेपथ्य में।)

जय जग जननि उदार, दनुज दलनि भवभय हरनि।
लै खप्पर तरवार, रच्छा निज जन की करहु॥

[पृ]थ्वीराज । अहा ! शकुन तो बहुत अच्छा मिला । मा ! कब तक चुप चाप बैठी रहोगी ? कब तक अपने सन्तानों की दुर्दशा देखती रहोगी ? अब उठो, मौन साधने का समय नहीं है, (खड़े हो कर) देवीजी की आरती का समय है चलैं, हम भी प्रार्थना करें । (प्रस्थान)

पञ्चम गर्भांक ।

(दिल्ली-मुसलमानों की गोष्ठी)

[ए]क मुसलमान । यार हम लोगों को तो अब कोई पूछता ही नहीं, क्या करैं ।

[दू]सरा । अजी पूछे कहां से—अपनी पौ बारह तो तब हो जब कुछ राग रंग हो, कुछ इधर उधर झांक झूंक हो, सो यहां कोई ठिकाना हो नहीं ।

[ती]सरा । कुछ पूछो मत, हमारे बादशाह सलामत तो ऐसे मुल्ला-जी हैं कि कभी कोई फ़र्माइश ही नहीं करते । सिवाय अपनी बीबी के कभी इधर उधर की हवा ही नहीं खाते ।

[च]ौथा । अजी निरा मज़दूरा है, यह क्या बादशाह होने क़ाबिल है ? रात दिन पीसना पीसा करता है; जब देखो हज़रत काम में मशगूल हैं,—ऐश आराम तो इसे ख़्वाब में भी नसीब नहीं ।

[पा]ंचवां । शहर की तवायफ़ें तो बिल्कुल रांड़ हो गईं । उन सभों की हालत पर तो रहम आता है, भाई मुझे तो एक दिन के लिये भी कहीं तख़्त मिल जाय तो रंग बाँध दूं, उन बेचारियों के दुःख दरिद्दर दूर कर दूँ और सारे शहर में रज गज मचा दूं ।

पहिला । अब वह दिन दूर गए, बैठे रोया करो, मुहर्रमी सूरत बनाए रहो, दर्बार में तो क़दम रखने का जी नहीं चाहता, जिन लोगों से जूते उठवाते थे अब वे सब दर्बार में बड़े मन्सब पाकर बढ़ बढ़ कर बोलते हैं ।

चौथा । (लंबी सांस लेकर) भाई जान, कहें क्या, जब अपना ही सोना खोटा हो तो परखवइया का क्या कुसूर ? अरे जब हज़रत सलामत ही काफ़िर हो गए तो फिर ये सब क्यों न उभड़ें ।

तीसरा । और लुत्फ़ तो यह कि हम लोग लब भी नहीं हिला सकते, ज़रा बोले नहीं कि वह बेभाव की पड़ने लगी कि सिर खुजला कर रह जाना पड़ता है ।

(बी इलाहीजान का प्रवेश—सब उठ उठ कर लंबी चौड़ी आदाब अर्ज़ करते हैं ।)

इलाहीजान ।(सब को सलाम का जबाब दे कर) क्यों हज़रत, क्या हम लोगों के नसीब के साथ आप लोगों का दिल भी फिर गया ।

पहिला । भला ऐसा कभी हो सकता है, जानेमन ! हम लोगों की तो ज़िन्दगी तुम हो । तुमसे कभी दिल फिर सकता है ? मगर करें क्या मजबूरी है, क्या मुंह ले कर आवें न गिरह में दाम है और न कहीं किसी उम्रा के यहां कुछ तार लगता है ।

तीसरा । अजी इस मनहूस बादशाह ने तो शहर को बेरौनक़ कर डाला, और तुर्रा यह है कि आप तो आप, आपके मुसाहिबीन और वज़रा भी जामए पारसाई पहिने हैं ! अब हम लोग क्यों कर जीएँगे ?

इलाहीजान । अब इसकी फ़िक्र कहां तक करोगे, अगर हम

तुम सलामत रहेंगे, तो बहुतेरे गांठ के पूरे आंख के अन्धे फँसैंहींगे, मगर मुलाक़ात क्यों तर्क करते हो? मैं कभी कुछ कहती हूँ?

चौथा। तुम्हारे इसी सब्र का नतीजा तो है कि इसी मनहूस के वक्त में एक मौक़ा हाथ आया।

सब। (घबरा कर) कौन मौक़ा?

चौथा। (बड़ी शेख़ी के साथ) अजी हज़रत, आप लोग कुछ ख़बर भी रखते हैं, अलमस्त पड़े रहते हैं, बन्दा रात दिन इसी फ़िराक़ में पड़ा रहता है, आपको क्या!

पहिला। फ़र्माइए तो मुआमिला क्या है?

दूसरा। वल्लाह कहो तो सही क्या गुल खिलाया?

तीसरा। लिल्लाह अब देर न करो, जल्द ज़बां खोलो।

पांचवाँ। मीर साहेब, आप बड़े कारू हैं, आप की क्या बात है, आपको सिर की क़सम जल्द उक़्दःकुशाई कीजिए।

(चौथा सिर हिला हिला मोछों पर ताव देता हुआ इधर उधर देखता है पर बोलता नहीं)

इलाहीजान। (मीर साहेब का हाथ पकड़ कर) वल्लाह! जब से तुमने यह ख़ुशख़बरी दी कलेज़ा उमड़ा पड़ता है, खुदा के लिये जल्द फ़र्माइए क्या मौक़ः हाथ आया।

मीर। खुदा की क़सम इन सभों को तो मैं हर्गिज़ न बतलाता मगर तुम्हारी बात नहीं टाल सकता! उदयपुर के राना ने राजा मानसिंह से कुछ बेहूदगी की है इसलिये शाही फ़ौज की उस पर चढ़ाई होने वाली है, बस अब यार लोगों की भी बन पड़ेगी, फौज के हमराह हम भी चलैंगे, मौक़ा पाकर अपना काम बनाएंगे, लूट का माल तो ऐनुल माल ही ठहरा और फिर इधर उधर मौक़े

से कोई घात लग गया तो उस में भी कोई मुज़ायक़ा नहीं। वहां से लौट कर आवेंगे तब फिर आप को हाज़िरी देंगे और सारे दिनों की कसर निकालेंगे।

(सब के सब मारे हर्ष के उछल पड़ते हैं और "ख़ूब" "ख़ूब" कह कह कर एक दूसरे से हाथ मिलाते और क़हक़हा मारते हैं।)

इलाहीजान। (मन में प्रसन्न हो कर परन्तु प्रकाश में कातर स्वर से) नहीं, नहीं, लड़ाई में बड़े ख़तरे रहते हैं। मैं तुम लोगों को न जाने दूंगी।

मीर। तुमने क्या हम लोगों को बेवक़ूफ़ समझा है। अरे हम लोग लड़ाई के वक़ टल रहते हैं और जब लूट का वक़ आता है तब सब से आगे कूदते हैं।

इलाहीजान। और अगर शाही फ़ौज ने शिकस्त खाई?

मीर। तो हमारा नुक़सान क्या? उस्तरा पास रक्खेंगे फ़ौरन डाढ़ी मूँड़ जुन्नार पहिर हिन्दू बन जायंगे।

इलाहीजान। अच्छा, तो आओ हम लोग ख़ुदावन्द तआला से कामयाबी के लिये दुआ मांगें।

(सब मिल कर गाते हैं)

मुरादें बर आएँ हमारी खुदाया।
हमेशः हो मतलब बरारी खुदाया॥
जहाँ में जहाँ तक गुज़र हो हमारी।
बिछाए रहें जाल भारी खुदाया॥
बनाएँ निशाना जिसे वह न छूटे।
न हो वार खाली हमारी खुदाया॥
कोई मत का हीना औ पूरा गिरह का।
रहे करता ख़िदमत गुज़ारी खुदाया॥

ये बुड्ढे ख़बीसों से दुनियाँ हो ख़ाली।
हो नौउम्र ज़ी अख़्तियारी खुदाया॥
गली कूचे घर घर में ऐशो तरब हो।
हमेशः रहै दौर जारी ख़ुदाया॥
हो घर में मुयस्सर न रोटी व कपड़े।
मगर हो न कम मैखुमारी ख़ुदाया॥

(पटाक्षेप।)



पञ्चम अङ्क।

प्रथम गर्भाङ्क।

(स्थान उदयपुर—देवीजी का मन्दिर)

(मालती पूजा कर रही है)

(नेपथ्य में गान)

जय जग जननि हरनि भवभय दुख भक्ति मुक्ति सुख कारिनि।
असुर निकन्दिनि सुर नर बन्दिनि जय जय विश्व बिहारिनि॥
जब जब भीर परत भक्तन पै तब तब निज वपु धारी।
असुर संहारत भक्त उबारत आरत हृदय बिचारी॥
तुव पद बल हम गिनत न काहू चरित उदार तुम्हारे।
अब जिनि बिलम करहु जगजननी मेटहु दुःख हमारे॥ १॥

मालती—माँ!
"मोर मनोरथ जानहु नीके। बसहु सदा उरपुर सब ही के"
मैंने कठिन व्रत धारन किया है। मां! ऐसी सुमति देना जिसमें मन न डिगने पावे। एक ओर प्रेम और दूसरी ओर धर्म है। जननी! इसका निबाह मेरी सामर्थ्य से बाहर है, केवल तुम्हारी कृपा साध्य है। इस तुच्छ हृदय को उसके सहने का बल प्रदान करो-गुलाबसिंह का उद्योग सफल हो। जगतजननि! उनकी सफलता के साथ तुम्हारे सन्तानों की भी सफलता है, अतएव इधर, ध्यान दीजिए। मां! अशरणशरणि! त्राहि!

(गद्गद कंठ से प्रणाम करती हैं, सखियाँ आरती लिए आती हैं मालती आरती करती है, सभों का एक साथ गाना।)

राग रामकली।

"जय जय जगजननि देवि, सुर नर मुनि असुर सेवि,

भक्ति मुक्ति दायिनि,भय हरनि कालिका। मंगल मुद सिद्धि सदनि, पर्व शर्वरीश बदनि, ताप तिमिर तरुण तरणि किरण मालिका॥ वर्म्म चर्म कर कृपाण, शूल सैल धनुष बाण, धरणि दलनि दानव दल, रण करालिका। पूतना पिशाच प्रेत, डाकिनि शाकिनि समेत, भूत ग्रह वेताल खग, मृगाल जालिका॥ जय महेश भामिनी, अनेक रूप नामिनी, समस्त लोक स्वामिनी, हिम शैल बालिका। भारत आरत अनाथ, दीजै सिर अभय हाथ, जय जय जगदम्ब पाहि, प्रणत पालिका॥

(मन्दिर में प्रकाश हो जाता है और देवीजी के कंठ से माला खसक कर गिरती है)

सखियाँ। ले सखी! तुझे बधाई है, माँ ने प्रसन्न हो कर तुझे प्रसाद दिया है।

(मालती माला उठा सिर चढ़ाती है, धीरे धीरे परदा गिरता है)

द्वितीय गर्भाङ्क।

[स्थान उदयपुर--राणा का दर्बार।]

(राणा और सर्दारगण यथा यथा स्थान पर बैठे हैं, गुलाबसिंह राणा के सामने खड़ा है।)

गुलाबसिंह। हुकुम अन्नदाता! बीकानेर कुंवर पृथ्वीराज श्री दर्बार के बड़े शुभचिन्तक हैं। उन्होंने यह पत्र दिया है।

(पत्र देता है।)

राणा—(पत्र मंत्री को देकर) मंत्री! इसे पढ़ो।

(मंत्री पढ़ता है।)

स्वस्ति श्री हिन्दू कुल गौरव मान बढ़ावन।
वीरनाद हुंकारि शत्रुदल हृदय कँपावन॥

रविकुलरवि सिसैादिया ध्वज जग में फहरावन ।
श्री प्रताप राणा प्रताप जग मैं फैलावन ॥
पृथ्वीराज तुव दास अनेकन करत प्रणामा ।
इतै कुशल उत ईश संवारैं सब तुव कामा ॥
सुनिए इत की कथा—मान उत ते जब आए ।
बरनत निज अपमान रोष बेहद्द बढ़ाए ॥
ताही समय और फरियादिहु आनि पुकारे ।
लूट्यो शाही भेंट कह्यो—कह शाह बिचारे ॥
बादशाह भये आग बबूला यह सब सुनतहिं ।
मान मुहब्बतखानहि आज्ञा दीनी तुरतहि ॥
एक लाख लै सैन तुरत राना पै धाओ ।
उदयपूर करि चूर सकल गढ़ धूर मिलाओ ॥
थापि आपनी थाप दाप परताप मिटाओ ।
करि बंदी तेहि तुरत आज दर्बार पठाओ ॥
सुनि आज्ञा-फ़रमान किए सेना पर जारी ।
मान, मुहब्तखान कूच की करत तयारी ॥
पहुँचे समुझौ तिन्हें सदा रखियो हुसियारी ।
परम प्रबल अरि दलन, दलन की करो तयारी ॥
हम सबनै तो राजपूत को नाम डुबायो ।
अबलैां तुमहीं एक मान मरजाद बचायो ॥
पितर खरे आकाश मार्ग तुम्हरो मुख जोवत ।
इक तुम्हरीही आस वीर छत्री सब सोवत ॥
जब लैां तन मैं रहै प्राण तब लैां जिनि डिगियो ।
हे प्रताप भारत प्रताप सुधि जिय मैं पगियो ॥
ह्याँ के सब संवाद भेजियैां तुम्हें बराबर ।
ह्यां निज जय की खबर हमें दीजो किरपा कर ॥

तुव प्रताप राणा प्रताप सब पूरि रहै छिति।
विजय लक्ष्मी तुम्हैं मिल नित किम् अधिकम् इति॥

राणा। (आवेश के साथ) आवैं, आवैं, हम सदा उनके लिये तैयार हैं, वे आवैं तो सही, (सर्दारों के प्रति) हमारे वीर सर्दारो!

सावधान सब लोग रहहु सब भाँति सदाहीं।
जागत ही सब रहैं रैन हू सोवैं नाहीं॥
कसे रहैं कटि रात दिवस सब वीर हमारे।
अस्व पीठ सो होहि चारजामे जिनि न्यारे॥
तोड़ा सुलगत रहैं चढ़े घोड़ा बंदूकन।
रहैं खुली ही म्यान प्रतंचे नहि उतरैं छन॥
देखि लेहिंगे कैसे पामर जवन बहादुर।
आवहिं तो सनमुख चढ़ि कायर कूर सबै जुर॥
दैहैं रन को स्वाद तुरन्तहिं तिनहि चखाई।
जोपै इक छन हू सनमुख ह्वै करहिं लराई॥

(धीरे धीरे परदा गिरता है।)

तृतीय गर्भाङ्क।

[स्थान अजमेर-शाही फौज का ख़ेमा]

(शाहज़ादः सलीम, * मानसिंह और मुहब्बत खाँ तथा और सेनापतिगण)

मानसिंह। (शाहज़ादे से) हम लोग दौड़ा दौड़ तो यहाँ तक पहुंचे, अब हुजूर का क्या क़स्द है?

---

* टाड साहब ने अपने राजस्थान में उदयपुर की लड़ाई में शाहजादः सलीम का जाना लिखा है, परन्तु अब यह निश्चय हो गया कि शहजादः उस समय बहुत ही छोटा था और वह इस लड़ाई में नहीं भेजा गया था।

सलीम । मेरी राय है कि अब यहाँ दो चार दिन आराम कर के तब आगे बढ़ा जाय ।

मुहब्बतख़ाँ । ख़ुदावन्द ! ताबेदार की राय नाक़िस में अब एक लहज़ः भी तवक्कुफ़ करना मुनासिब नहीं, क्योंकि अगर दुश्मनों को ज़रा भी ख़बर हो जायगी तो फिर फ़तहयाबी मुश्किल हो जायगी, एकाएक जा गिरना चाहिए ।

मानसिंह । ख़बर की आप क्या कहते हैं ? प्रतापसिंह कोई मामूली आदमी नहीं है । उसने जब सोते सिंह को छेड़ा है तब पहिले ही से बचने का भी उपाय किया ही होगा । जिस वक़्त उसके यहाँ से हम बिदा हुए उसी समय उसका दूत भी दिल्ली ख़बर लेने छूटा होगा, अब जितनी ही देर होगी उतना ही वह तैयार हो सकैगा ।

सलीम । ख़बर ही होकर क्या होगी ? क्या उसकी फ़ौज हम से ज़ियादः है ?

मानसिंह । शाहज़ादे सलामत? आपको कभी इनसे काम पड़ा होता तो हर्गिज़ ऐसा न फ़र्माते । उसकी फ़ौज हम लोगों की चौथाई भी न होगी मगर एक राजपूत दस आदमियों के लिये काफ़ी है—तिस पर मेवाड़ के राजपूत तो ग़ज़ब के बहादुर होते हैं, ज़रा चित्तौर के जंग का हाल ख़ाँ साहब से पूछें तब कैफ़ियत मालूम होगी ।

मुहब्बतख़ाँ । इसमें कोई शुबहः नहीं—अगर वे लोग पहिले से ख़बरदार हो जाँयगे हर्गिज़ फ़तह नसीब न होगी,—चित्तौर पर बड़ी ही मुश्किलों से फ़तह नसीब हुई थी वह भी घर की फूट से ।

सलीम। तो बिस्मिल्लाह कीजिये—सलीम आरामतलब नहीं है। आप लोग मेरी तरफ़ से इतमीनान रक्खें। मैं तो महज़ आप लोगों के आराम के ख़ियाल से कहता था—मगर महाराज मानसिंह! अगरचि राजपूत बड़े बहादुर हैं—मगर मुग़ल भी कोई ऐसे वैसे नहीं हैं। राजपूतों को घर बैठे लड़ना था मगर मुग़लों ने तो हज़ारों कोस से आ कर हिन्द को फ़तह किया था, सलीम ने भी कमज़ोर हाथ से तलवार नहीं पकड़ी है और फिर हमारे साथ तो राजपूत कुलतिलक महाराज मानसिंह हैं।

मानसिंह—यह कौन कहता है कि मुग़ल बहादुर नहीं हैं। मगर खुदावन्द—अगर घर में नफ़ाक़ न होता तो ज़रा हिन्द को फ़तह करना मुश्किल था, ख़ैर—मेरी ग़रज़ सिर्फ़ यह है कि देर करने में बजुज़ नुक़सान के कोई फ़ायदा नहीं।

सलीम। बेशक—तो आज ही कूच करना चाहिए।

मानसिंह। (सेनापतियों के प्रति) बादशाह सलामत ने आप ही लोगों के भरोसे इस जंग को छेड़ा है और अपने लख़्ते जिगर शाहज़ादः सलीम को साथ दिया है। आप लोग ऐसी मुस्तैदी और बहादुरी के साथ उदयपुर पर धावा करें कि चलते ही दुश्मनों को हटा दें।

एक सेनापति। हुज़ूर! इसकी कैफ़ियत मैदान जंग में मालूम होगी, हम लोग तो जाँनिसार हैं। मगर मेरी अक़्ल नाक़िस में इधर से कोई शख़्स ऐसा जाना चाहिए कि जो वहाँ की भीतरी ख़बर भी ले और अगर मुमकिन हो तो उनमें से कुछ चीदः सरदारों को अपनी तरफ़ मिलावे।

मुहब्बतखाँ । खूब-खूब-तुमने यह खूब सोचा, मगर इस वक्त इस काम के लिये तुमसे बढ़कर और कौन है ?

सेनापति । (मन में "जो बोले सो घी को जाय" (प्रकाश) हालां कि फ़िद्वी किसी क़ाबिल नहीं, मगर तामील इर्शाद फ़र्ज़ समझ कर रज़ा चाहता है ।

सलीम । शाबाश, आपही सा जवांमर्द मुस्तैद शख़्श तो ऐसा काम अंजाम दे सकता है, अच्छा अब आप अल्लाहो अकबर का नाम लेकर कूच कीजिए ।

(सेनापति को पान देता है और वह सलाम कर के जाता है ।)

मानसिंह । (सेनापतियों के प्रति)

चलो चलो सब वीर बहादुर कमर कसो अब ।
दिल्लीपति सेवा को अवसर फिर पैहौ कब ॥
निज प्रताप बल तुच्छ प्रताप प्रताप मिटाओ ।
थापि आपनी थाप ताप निज अरिहिं तपाओ ॥
चढ़ि शिखर उदयपुर महल के शाही ध्वज फहरावहीं ।
जय नाद जु अकबर शाह की चारो ओर मचावहीं ॥१॥

सब । आमीं-आमीं-आमीं । (पटाक्षेप ।)



चतुर्थ गर्भांक ।

(स्थान-उदयपुर अन्तःपुर)

(महाराणा और महाराणी ।)

प्रतापसिंह । मानसिंह ने जो कुछ किया वह तुमने सुना ही ।

महाराणी । महाराज ! मानसिंह का कौन दोष है ? आप ने जो सलूक उनके साथ किया उसके बदले वह और करते ही क्या ?

प्रताप । प्रिये ! तुम प्रतापसिंह की स्त्री होकर ऐसी बात

कहती हो? मानसिंह को अपनी करतूत पर लज्जित होकर घर बैठना था, या एक अनुचित काम करके उसे ढाकने के लिये दूसरा घोरतर अनुचित काम करना था? जब मान हो नहीं तो फिर मानसिंह क्या? चाहे हम लोगों का हिन्दूधर्म भला हो या बुरा परन्तु जब तक हम हिन्दू धर्म अवलम्बन किए हैं उसके नियमों का पालन करना हमारा कर्त्तव्य है। जहां हमारे धर्मानुसार हिन्दुओं हो में एक जाति दूसरी जाति का बनाया अन्न नहीं खाती, वहां विधर्मी मुसलमानों को बेटी देना क्या कम लज्जा और घृणा की बात है? और फिर यदि उसने किसी कारण से ऐसा काम कर भी डाला था तो चुपचाप लज्जित होकर उसके लिये पश्चात्ताप करना उचित था, या यह कि और भी बचे बचाए लोगों का धर्मनाश करना? दो चार लड़ाइयों को जीत कर उसका मन बहुत ही बढ़ रहा था इसलिये मैं ऐसा न करता तो और क्या करता? यदि वह यहाँ से भी अपने घृणास्पद काम के लिये कुछ शिक्षा न पाता तो संसार में और कहाँ पाता? यह अधर्म भी तब धर्म ही समझा जाता, क्योंकि इस गद्दी की बड़ाई केवल हिन्दू गौरवरक्षा के कारण है। यदि हम ऐसा न करते तो इस कुल को कलंकित करते, दूसरे यह कि उसे इस बात का बड़ा अभिमान होता कि राणा मेरे भय से दब गया और उसने मेरे धर्म पर ढाकन डाल दिया, इस लिये, प्यारी! मरना अच्छा—राज्यासन छोड़ कर बन बन घूमना अच्छा, परन्तु अपयश और अधर्म का भागी होना नहीं अच्छा।

तरु छाया आसन सिला भीलन संग निवास ।
परम सुखद पै धर्म तजि रुचत न राज विलास ॥

रानी । नाथ ! हमारा अपराध क्षमा कीजिए, हम स्त्री जाति कहाँ तक समझ सकती हैं। हमारे लिये तो यह भाग्य की बात है कि आपकी सेवा का अधिक अवसर मिलेगा।

जल भरि सब थल स्वच्छ करि नाना पाक बनाय ।
बड़ भागिनि जीवन करूं श्रमित पलोटौं पाय ॥

प्रतापसिंह । शाबाश ! यह बात तुम्हींको शोभा देती है। भला, मानसिंह, भला, तुमने जो किया अच्छा किया इसका प्रतिफल तुम्हें दिए बिना विश्राम नहीं लेने का।

जबलौं नहि गढ़ ढाहि करि दासिन कौड़िन बेच ।
करौं न दक्षिण कर असन सेज न पगिया पेच ॥*

---

* यह किम्बदन्ती प्रसिद्ध है कि महाराणा प्रतापसिंह ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक जयपुर का गढ़ अपने हाथ से ढहा कर दासियों को कौड़ी के मोल न बेच लूंगा न शय्या पर शयन करूँगा न सिर पर पाग रक्खूंगा और न दाहिने हाथ से भोजन करूंगा। इस प्रतिज्ञा का पालन उस वंश वाले बराबर करते आते थे। जयपुर के महाराज रामसिंह ने सोचा कि क्षत्रियों की प्रतिज्ञा महा भयानक होती है, एक न एक दिन परिणाम बुरा होगा। इसलिये सन् १८७७ ईसवी में जब श्रीमती भारतेश्वरी के प्रिय युवराज प्रिंस आफ़ वेल्स भारत में आए थे उस समय महाराणा सज्जनसिंह और महाराज रामसिंह उनसे भेट करने बम्बई गए थे, तब महाराज रामसिंह आग्रह पूर्वक महाराणा साहिब को जयपुर ले गए। ज्यों ही किले के दरवाजे पर पहुंचे तोप में गोला भरा तैयार था। महाराज रामसिंह ने

(नेपथ्य में)

आलसनिसि भइ भोर उदय होत रविकुल तरनि।
भागहु कायर चोर अब विलंब नहिं नास मैं ॥

महाराणा साहिब से बहुत आग्रह करके उसे उनके हाथ से दगवा कर दो चार कनगूरे गढ़ के ढहवा दिए और दो चार गोपियों (दासियों) को अपने ही मुसाहिबों के हाथ कौड़ियों मोल बिकवा दिया। इस भाँति उनकी प्रतिज्ञा पूरी कराके उन्हें शय्या पर सुलाया और आप पगड़ी पहराई। यह किम्वदन्ती कहाँ तक ठीक है इसका निर्णय करने के लिये मैंने अपने मित्र कुँवर जोधसिंह (उदयपुर राज्य के सुयोग्य दीवान राय पन्नालाल बहादुर सी० आई० ई० के भ्रातृ पुत्र) को लिखा था। उन्होंने जो उत्तर दिया है अविकल प्रकाशित किया जाता है। पाठकगण इससे इसकी अकीलता समझ सकेंगे।

"प्रताप नाटक" आपने पद्मावती से भी अच्छा लिखा है। आपने जो प्रतापसिंह की जयपुर के लिये प्रतिज्ञा पूछी यह इधर प्रसिद्ध नहीं है और न मैंने भी किसी इतिहास में पढ़ी। श्री महामहोपाध्याय कविराज श्यामलदास जी निर्मित "वीरविनोद" नामक बृहत् इतिहास में महाराणा प्रतापसिंह जी के प्रकर्ण में इन प्रतिज्ञाओं का जिक्र नहीं है। यह बात भी निरी निर्मूल है कि रामसिंह जी ने महाराणा सज्जनसिंह से कोई प्रतिज्ञा पूरी करवाई थी। न जाने ऐसी निर्मूल गप्पें क्यों लोक में प्रसिद्ध हो जाती हैं। आपने टाड राजस्थान या मेरे ही छोटे इतिहास में पढ़ा होगा कि महाराणा अमरसिंह जी द्वितीय ने ही जयपुर के महाराज सवाई जयसिंह जी को निज कन्या ब्याह दी थी और जयपुर से एक घर का सा व्यवहार हो गया था। व उसके

प्रतापसिंह। प्रिये, अब बिदा करो, देखो कविराजा जी युद्ध आरम्भ करने की सूचना दे रहे हैं।

रानी। (सहास्य) नाथ, आप सुख से पधारें परन्तु दासी को भूल न जाइएगा।

(राजकुमार एक छोटी सी तलवार लिए दौड़ते हुए आते हैं)

उपरांत जयसिंह के पश्चात् सवाई माधोसिंह जी उनके पुत्र और मेवाड़ के भानजे थे, गद्दी पर बैठे।

हां, जयपुर से सम्बन्ध रखने वाली श्री प्रतापसिंह जी के समय में कुँवर मानसिंह और भगवानदास का अलहदा अलहदा तौर से श्री जी के पास आना व हलदीघाटी की लड़ाई प्रसिद्ध घटना हुई थी। इसके सिवाय और भी कई घटनाएँ श्री प्रतापसिंह जी के समय की प्रसिद्ध हैं और इतिहास में भी कई सन्निवेशित की गई हैं वे कहाँ तक लिखी जायँ पर उनमें भी जयपुर से सम्बन्ध रखनेवाली तो दो ही हैं।

आप अपने नाटक को सुखान्त करोगे या दुःखान्त ? क्योंकि उनके पिछले आठ वर्षों में अकबर ने चढ़ाई फिर मेवाड़ पर न की थी और उनके पुत्र अमरसिंह जी के समय में अकबर के बाद तो जहाँगीर ने ही अमरसिंह जी पर आप अजमेर में रह कर सेना भेजी थी। यदि दुःखान्त करोगे तो प्रतापसिंह जी के परलोकवास की घटना के सिवाय कोई दुखदायक वार्ता नहीं हुई। उनके परलोक करते समय का पश्चात्ताप तथा उपदेश बड़े वीरता के शब्दों से भरे थे।

आज मेरे पत्र में जिन वीर पुरुषों का विशेष हाल है उन्हीं के लिये यहाँ जो दोहे प्रसिद्ध हैं उन्हें लिखता हूं और अन्त में एक श्लोक

राजकुमार। (तलवार खोल कर) मा ! हम बाद्छाह के बेते का छिल इछी तलवार छे कात कर खेलने का गेंद बनावैंगे हमें भी दलबाल के छाथ जाने का हुकुम देव।

रानी। वत्स ! तुम अवश्य जाओ--पर लूट में जो गहना लाना वह हमीं को देना।

राजकुमार। हाँ हाँ, छब तुमको देंगे पल छिलपेच औल कलंगी तो हमही पहिलैंगे।

(सब लोग हँसते हैं।)

भी लिखता हूं जो एक प्रतापसिंह जी के खोदित लिपि में मिला है जिसमें हलदीघाटी की लड़ाई का वृत्तान्त है। यदि उचित समझें तो इन दोहों को नाटक के टाइटल पर छपवा देवें।

सोरठा।

अकबर समद अथाह। सूरायण भरियो सलल ॥
मेवाड़ी तिण माह्न। पायण फूल प्रताप सी ॥
अकबर घोर अन्धार। ऊघाणे हिन्दू अवर ॥
जागे जग दातार। पोहरे राण प्रताप सी ॥
अकबर एकण बार। दागल की सारी दुनी ॥
बिन दागल असवार। एकज राण प्रताप सी ॥

श्लोक।

कृत्वा करे खड्गलतां सुवल्लभां। प्रतापसिंह समुपागते प्रगे ॥
सा खण्डिता मानवती द्विषच्चमू। संकोचयंती चरणौ पराङ्मुखी ॥

ऐतिहासिक गलती।

यह बात निश्चित रूप से प्रसिद्ध हुई है कि हलदीघाटी की लड़ाई में अकबर स्वयं मौजूद न था और न उसका शाहजादा। पर मानसिंह था और उसके संग शाही सैनिक अफसर भी थे।

(नेपथ्य में महाराज प्रतापसिंह की जय का कोलाहल होता है।)

प्रतापसिंह । (खड़े होकर) सेना लड़ने के लिये बड़ी उत्सुक हो रही है । प्रिय ! अब जाता हूँ—देखें इस जन्म में फिर तुम्हारा चन्द्रानन देखने में आता है कि नहीं ।

रानी । नाथ ! हमारा आपका साथ क्या कभी छूट सकता है ? भगवान् श्री एकलिंग जी बहुत ही शीघ्र विजयलक्ष्मी देंगे।

प्रतापसिंह । तथास्तु ।

(प्रतापसिंह नंगी तलवार लिए आगे आगे, राजकुमार छोटी नंगी तलवार लिए पीछे पीछे मुड़ मुड़कर प्रेमपूर्वक रानी की ओर देखते हुए जाते हैं—रानी अतृप्त नेत्रों से देखती है ।)

(पटाक्षेप ।)

पञ्चम गर्भाङ्क ।

(उदयपुर–मैदान ।)

(महाराणा की सेना, घोड़े पर महाराणा, सरदारगण तथा कविराजा ।)

कविराजा—

उमड़ी क्यों सुरबाला सब नभ मंडल मोहैं ।
ह्वै व्याकुल क्यों लरत करन जयमाला सोहैं ॥
कटकटाइ क्यों अरी योगिनी धावत उत इत ।
गिद्धराज मेंड़रात व्यर्थ ही कलह करत कित ॥
धरि धीर बैठि देखत न किन सबकी आसा पूरिहै ।
जब वीर प्रताप कृपाण लै शत्रुन के तन घूरिहै ॥ १ ॥
कहा कहत ? मम प्यास राम रावण रण माहीं ।
कौरव पाण्डव लरे बुझी तबहूँ वह नाहीं ॥

ताहि बुझावन हार कौन जग में है जायो।
हाय! न कोऊ अब लैां मेरो हृदय जुड़ायो॥
चुप लखत न क्यों रे बावरे छिन ही मैं घबराइहै।
जब बाण गंग इत उमड़िहै तो पै पियो न जाइहै॥ २॥
अहो वीर क्यों करत विलम अवसर क्यों खोवत।
क्यों न शत्रु सिर गिरत बाट अब काकी जोवत॥
देखो नभ में पुरुषे तुव मति की गति जोहत।
हिय उछाह आनन्दित मुख आतुरता सोहत॥
करि सिंहनाद हरि शत्रु हिय अपुने पांव बढ़ाइयै।
जय जयति मिवार प्रताप जय कहि अरि हृदय कंपाइयै॥३॥

(महाराणा प्रतापसिंह की जय, मेवार की जय आदि कोला-हल करते उत्साह के साथ सेना का नेपथ्य में गमन और दूसरी ओर से गुलाबसिंह का प्रवेश।)

गुलाब। प्रेम! तेरा इतना बड़ा साहस कि तू पाषाणवत कठोर वीर हृदय पर भी अपना अधिकार जमा लेता है? अरे जिस गुलाबसिंह ने कभी स्वप्न में भी शत्रु से पीछा न दिया होगा आज तैंने उसे डोर में बांध कर अपना बन्दी बना लिया? किधर से आया, कब आया और कैसे इस दृढ़ हृदयगढ़ में समाया कुछ जान भी न पड़ा कि भला मैं कुछ तो अपने जी को निकाल लेता, तुझे कुछ तो दिखला देता कि वीर हृदय पर चढ़ाई करने का फल क्या होता है? पर हाय! मैं अब क्या कर सकता हूं, अब तो तेरे फन्दे में फँस गया, हिल तो सकता ही नहीं वीरता क्या दिखलाऊँ! हाय! देशभक्त वीर क्षत्रिय लोग वह देखो रणभूमि में पहुँच गए और मैं अभी यहीं खड़ा हूं! कुछ चिंता नहीं।

भाइयो ! मैं भी पहुँचा । गुलाबसिंह पीछे रहने वाला नहीं है । तुम्हारा साथ देगा, अब मुझे प्राण विसर्जन करने में तनिक भी आगा पीछा नहीं है । मैं अपनी प्रेम पुत्तलिका से अन्तिम बिदाई ले आया । अब उसके कोमल मुखकमल का ध्यान करते करते मैं निःसंकोच अपनी मातृभूमि के लिये प्राण खो सकूँगा । (कुछ ठहर कर इधर उधर टहलते हुए) प्राण ! क्यों घबराते हो ! क्यों, शत्रुहीन पृथ्वी करने के लिये व्याकुल हो रहे हो ? पृथ्वी में कौन है जो तुम्हारी चोट को सम्हाल सकेगा । जब तुम अकेले थे तब तो कोई तुम्हारा सामना कर ही नहीं सकता था और अब ? अब तुम्हारे साथ प्रेम के रहते कौन है जो तुम्हें जीत सके । अब तो "कार्यं वा साधयामि शरीरं वा पातयामि" प्यारी मालती ! देखो अपनी प्रतिज्ञा स्मरण रखना । देखो अभी तुम्हारा गुलाबसिंह तुम्हारी आज्ञा पालन करके आता है । अभी अपनी असीम साहसाग्नि में शत्रु दल भस्म कर तुम्हारा हृदयराज्य अधिकार करेगा अथवा तुम्हारे प्रेममय मुख का ध्यान करता करता अनन्त सुख धाम की ओर प्रस्थान करेगा । पर याद रखना तुम्हारा चातक कभी दूसरे जल से तृप्त न होगा; तुम भी कृपा कर उसकी सुध न भुला देना ।

(नेपथ्य में कोलाहल)

(चौंक कर) जान पड़ता है लड़ाई आरम्भ हो गई । तो मैं भी पहुँचा–(उन्मत्त की भाँति वीरदर्प के साथ जाता है ।)

षष्ठ गर्भाङ्क ।

(स्थान—एक पहाड़ी बरसाती नदी का किनारा)

(नदी के एक किनारे पर चेतक घोड़े पर सवार प्रतापसिंह और पीछे पीछे घोड़े पर सवार सक्ता जी, दूसरी ओर दो मुग़ल सर्दार मुमुर्ष अवस्था में भूमि पर पड़े छटपटा रहे हैं ।)

सक्ता जी । (राणा को ललकार कर) ओ नीले घोड़े के सवार !

राणा । (पीछे फिर कर सक्ता जी को देख घोड़े को रोक कर मन ही मन) आह ! यह क्या, सक्ता इस समय अपना बैर चुकाने आया है? अच्छा कुछ चिन्ता नहीं । उन नीच यवनों के हाथ से मरने की अपेक्षा अपवित्र सिसोदिया कुल के हाथ से वीर गति पाना सहस्र गुण श्रेय है । (प्रकाश ललकार कर) रे क्षत्रिय कुलकलंक ! आ हम तेरी प्रति-हिंसा वृत्ति चरितार्थ करने के लिये प्रस्तुत हैं ।

सक्ता जी । (घोड़े से कूद कर राणा के पैर पकड़ कर) भैया प्रताप, वाक्यबाणों से हमारा हृदय मत बेधो । बहुत हुई: हम प्रतिहिंसा लेने नहीं आए हैं, हम अपराध मार्जना कराने आये हैं । भाई प्रताप, एक बेर हृदय से कहो—सक्ता, हमने तेरा घोर अपराध क्षमा किया !

राणा । (सक्ता का हाथ थाम कर साश्रुनयन) भाई सक्ता, प्यारे भाई, हमने तुम्हारे अपराधों को क्षमा किया । क्या तुम भी हमारे अनुचित बर्तावों को अपने हृदय से भुला दोगे ?

सक्ता । (रोते रोते) भैया, भैया, अब कुछ न कहो, अब नहीं सही जाती, हाय जिसने तुम्हारे जैसे वीर, देशहितैषी, उदार और प्रेमपूरित हृदय भाई के साथ शत्रुता का, क्या उससे बढ़कर नीच कोई संसार में हो सकता है,

उसके साथ जो बर्ताव किए जायँ थोड़े हैं।

राणा। (आँखों को पोंछ कर—बात फेर कर) हाँ यह तो बतलाओ तुम यहाँ इस कुसमय में कैसे आ गए?

सक्ता। (आँख पोंछते पोंछते) जब हमने देखा कि रणक्षेत्र से तुम इस ओर बढ़े और इन दोनों नीच अन्यायी यवनों ने तुम्हारा पीछा किया, हमसे न रहा गया, न जाने कैसा भ्रातृस्नेह हृदय में उमड़ा कि हमसे रुक न सका, हम भी पीछे हो लिए। जब तुम्हारा प्यारा चेतक तुम्हें लेकर तीर की भाँति नदी पार हो गया और वे दोनों नीच नदी हलने में हिचकिचाए हमने उन दोनों पर हमला किया और भैया प्रताप तुम्हारे चरणों के प्रताप से दोनों को मार गिराया, देखो वे दोनों पड़े छटपटा रहे हैं।

राणा। धन्य भाई सक्ता। धन्य, भाई मिलै तो तुम सा, आहा! सच कहा है "मिलै न जगत सहोदर भ्राता" आओ तुम्हें छाती से लगा हृदय शीतल करें। (राणा ज्योंही रिकाब से पैर निकालते हैं चेतक पृथ्वी पर गिरता और छटपटाता है)

राणा। (ब्याकुल होकर) अरे यह क्या? अरे मेरे बहादुर प्राणदाता चेतक, हाय, क्या तू मुझे यहाँ अकेला ही छोड़ कर भागना चाहता है?

(दोनों भाई दौड़ कर चेतक का ज़ीन आदि काट देते हैं। राणा दौड़कर नदी से अपनी पगड़ी भिगा कर जल लाते और चेतक के मुख में चुलाते हैं। सक्ता जी अपने डुपट्टे से हवा करते हैं। चेतक हाँफता और एकटक राणा की ओर देखता आँसू बहाता है।)

राणा। (चेतक के मुख को गोद में लेकर मुख चूम कर स्नेह के साथ हाथ फेरते हुए) प्यारे घोड़े, मेरा विपत्तिसहचर

चेतक, तू ऐसा क्यों कर रहा है ? अरे तू यहाँ मुझे किस के भरोसे छोड़े जाता है ? (आँखों से आँसू बहते हैं, चेतक जरा सा मुँह उठा कर धीमे शब्द से हिनहिनाता राणा की ओर देखता प्राणत्याग करता है, आँख खुली ही रह जाता है।) (प्रतापसिंह अत्यन्त करुण स्वर से)

विपति संघाती धोर, स्वामिभक्त साँचो सुहृद ।
चल्यो होइ बेपीर, रे चेतक परताप तजि ॥
सहे अनेकन घाय, चढ़ि सलीम गज सीस पै ।
पीछो दियो न पाय, अब क्यों भाजत मोहिं तजि ॥
रतन अमोलक तौल, सहस गुनो जो वारिए ।
तौहू लहै न मोल, रे चेतक तुव सामुहै ॥
करिके ऋनिया मोहि, हा हा चेतक चलि बस्यो ।
सहि नहिं सकत बिछोह, अब जीवन लागत वृथा ॥

सक्ता जी । (सांत्वना देकर) भैया, तुम धीर वीर होकर ऐसे अधीर होते हो ? चेतक ने अपना काम किया, प्राण दिया पर अपने कर्त्तव्य से विमुख न हुआ, और क्या प्रतापसिंह आज मोह के वशीभूत होकर निज कर्त्तव्य को भूल रहे हैं ? सारी हिन्दू जाति इस समय एक तुम्हारा मुख देख रही है—उठो देर न करो । मेरे इस घोड़े पर चढ़ कर किसी सुरक्षित स्थान पर जा कर अपने इन घावों की दवा करो, मेरे लिये कुछ चिन्ता न करना, मैं उन दोनों मुग़लों के घोड़ों में से एक को ले कर अभी मुग़ल शिविर में जाकर उनकी ख़बर लेता हूँ ।

(प्रताप के उत्तर की प्रतीक्षा न करके सक्ता का तीर की भाँति प्रस्थान और प्रतापसिंह का भौंचक से हो कर इधर उधर देखते रह जाना ।) (पटाक्षेप)

षष्ठ अंक।

प्रथम गर्भाङ्क।

(दिल्ली-शाही महल)

(अकबर और पृथ्वीराज।)

अकबर। अब तक उदयपुर की कोई ख़बर न मिली, तबीयत निहायत परेशान है।

पृथ्वीराज। हुज़ूर, राणा प्रतापसिंह को परास्त करना कोई हँसी खेल नहीं है, फ़ौज इसी तरद्दुद में होगी, इसी से कोई ख़बर नहीं आई। पर मेरी समझ में ऐसे ख़तरे की जगह शाहज़ादा सलीम को भेजना कुछ अच्छा नहीं हुआ।

अकबर। राजा साहब, यह आप क्या फ़र्माते हैं! अकबर ऐसा बुज़दिल नहीं है जो बमुक़ाबिल जंग अपनी या अपने औलाद की जान को अज़ीज़ समझे--अगर मैदाने जंग में बहादुरी के साथ मेरा फ़र्ज़न्द काम आवे तो मैं समझूंगा कि वह अपने हक़ को अदा कर गया और अपने तईं उसका वालिद होना फ़ख़्र मानूंगा। देखिए बचपन से मैंने जिस क़दर तकलीफ़ें उठाईं और जैसे ख़तरों में अपने तईं डाला अगर उनसे ख़ौफ़ खाता तो हर्गिज़ आज यह दिन नसीब न होता।

(नेपथ्य में)

जय प्रताप तुव शाह विजय लक्ष्मी चेरी सी।
हाथ बाँधि मनु करत रहत चहुँ दिसि फेरीसी॥
जो हतभागी परत आइ तुव कोप ज्वाल मैं।
भस्म होत छिन माहि पिसत सो काल गाल मैं॥

मेवार छार जय हार लै फ़तेह मुबारक मुख कहत ॥
युवराज सलीम उमङ्ग सों तुव पद चूमन अब चहत ॥

पृथ्वीराज । (मन में) देता तो है बादशाह को विजय की मुबारिकबादी, परन्तु पहिले हो मुख से "जय प्रताप" निकला । मा दुर्गे, तेरी शरण—

(शाहज़ादा सलीम का प्रवेश ।)

सलीम । (बादशाह के पैरों पर गिरता है और बादशाह उठा कर छाती से लगाता है) जहाँपनाह को आज फतहेहिन्द मुबारक हो ।

अकबर । (फिर सलीम को छाती से लगाकर) जिसे तुम्हारा सा फ़र्ज़न्द खुदावन्द तआला ने दिया हो उसके लिये ऐसी ऐसी फ़तहयाबी क्या हक़ीक़त है ? मगर यह तो कहो आज फतहेहिन्द के क्या मानी ? क्या अब तक हिन्द फ़तेह होने को बाक़ी था ?

सलीम । खुदावन्द—बन्दगाने आली ने गो कि सारे हिंद पर फ़तेहयाबी हासिल कर ली मगर जब तक इस छोटे से टुकड़े मेवार पर फ़तेह न हासिल हो, तब तक हिन्दुओं की नज़र में हिन्द फ़तेह नहीं हुआ । राणा को लोग हिन्दूपति कहते हैं ।

अकबर । तुम अभी फ़तेह की मुबारकबादी दे न रहे थे ।

सलीम । ज़रूर, बएक़बाले आली हम लोग फ़तेहयाब तो ज़रूर हुए मगर यह फ़तेह नहीं के शुमार में है ।

अकबर । क्यों—क्यों—

सलीम । खुदावन्द ! मैं शुरू से कैफ़ियत अर्ज़ करता हूँ । हम लोगों ने जाते ही अजमेर से सिपहसालार जवांमर्दख़ाँ को ख़बर लेने और दुश्मनों के चन्द लोगों को क़ाबू में

लाने की कोशिश के लिये भेजा, मगर ख़बर लाना और किसीको क़ाबू में लाना तो दूर किनार, वह हज़रत खुद दुश्मनों के क़ाबू में आ गए और डाढ़ी मूंछ मुड़ा कलन्दर की सूरत बना कर प्रताप की तरफ़ से बतौर तुहफ़ः हम लोगों के सामने पेश किए गए। एक तो तमाम फ़ौज मुस्तैद थी हो दूसरे उसकी इस हरकत से सबके सब गज़ब में आ गए और हमलोगों ने बड़े ज़ोर शोर से चढ़ाई कर दी--फिर मैं क्या अर्ज़ करूँ, वाह रे बहादुराने राजपुताना! जिस वक्त वे लोग भूखे शेर की तरह हमारी फ़ौज पर टूट पड़े कुछ अक़्ल काम न करती थी। वह मुट्ठी भर राजपूत हमारी वेशुमार फ़ौज को आन की आन में मूली की तरह काट कर रख देते थे। हमारे कैसे कैसे सर्दार इस जङ्ग में काम आए हैं कि ताबेदार कुछ गुज़ारिश नहीं कर सकता और उन लोगों के लिये तो मरना कोई बात ही न थी। ग्वालियर के राजा रामसिंह का इकलौता कुँवर खण्डेराव बड़ी बहादुरी से लड़कर मारा गया मगर रामसिंह को उसकी कुछ भी परवा न थी, गोया बारूद में पलीता लगा दिया गया। फिर किस तरह पर जान छोड़ कर वह लड़ा है कि फ़िद्वी अर्ज़ नहीं कर सकता।

अकबर। शाबाश बहादुर रामसिंह, शाबाश! हाँ फिर—

सलीम। मैं अपनी फ़ौज के घेरे में हाथी पर अम्मारी में सवार था--देखता क्या हूँ कि खुद प्रताप, देव की सूरत हाथ में भाला चमकाता घोड़ा फेंक कर हाथी पर पहुंचा और एक ही हाथ में महावत को मार गिराया। उस वक्त बिजली की तरह कड़क कर उसने मुझसे जो

कुछ कहा वह अब तक मेरे दिल में कड़क उठता है।

ाकबर (जोश में आकर खड़ा हो जाता है।)क्या कहा ?

हुजूर। कहा कि "अरे लड़के! तैं क्या ज़नानख़ाने में बैठकर लड़ाई की बहार देखने आया है? क्यों नहीं मैदान में निकलता? ख़ैर, तुझे लड़का समझ कर छोड़ देता हूं, मगर ले यहाँ का निशान लेता जा" इतना कह कर अम्मारी पर एक ऐसा भाला मारा कि अगला खम्भा पाशपाश हो गया।

ाकबर। (घबरा कर) फिर-फिर—

ालीम। इतने में तो नीचे से हमारे बहादुर सरदारों ने गोलियों की झड़ी बाँध दी। प्रताप को सात घाव लगे, बहादुर घोड़े को भी गोली लगी, दोनों नीचे आए-फिर तो वह खौफ़नाक जङ्ग हुआ कि जिसका बयान नहीं। इस जङ्ग में प्रताप का तो काम तमाम हो चुका था क्योंकि प्रताप अकेला ही मेरी फौज में आ कूदा था और वह चौतरफ़ से घिर गया था मगर वाहरे निमक-हलाल झाला राजा मानसिंह! यह तुम्हारा ही काम था। खुदावन्द, वह बिजली की तरह बादल के मानिन्द फ़ौज को चीरता हुआ पहुँचा और राणा को हटा कर आप राणा की जगह खड़ा हो गया और राणा के धोखे आप मेरे सिपाहियों के हाथ जां बहक़ हुआ मगर अपने मालिक को बचाया।

ृथ्वीराज। (मन में) धन्य झाला राजा धन्य, तुम्हारा जन्म सुफल हुआ।

ाकबर। फिर प्रतापसिंह का क्या हुआ ?

ालीम। हुजूर! मेरे सिपाइ तो यह समझ कर कि प्रताप

मारा गया खुशी के मारे मरने लगे और झाला राजा के सिपाह बिजली के मानिन्द राणा को लेकर निकल गए।

अकबर । वाह रे बहादुराने राजपूताना, वाह ! क्यों न हो यह उन्हींके हिस्से हैं—हाँ फिर क्या हुआ ?

सलीम । हमारे दो बहादुर सरदारों ने प्रताप का पीछा किया और करीब था प्रताप को मार लेते क्योंकि प्रताप तो मजरूह था ही लेकिन उसके बहादुर और वफ़ादार घोड़े चेतक ने बावजूदे कि निहायत ही जख़्मी था ऐसी वफादारी की जो इन्सान से नामुमकिन है; और अपने मालिक को बचा लिया। दर्मियान में एक बर-साती नदी आ गई। हमारे सरदार जब तक उसके क़रीब पहुँचें चेतक राना को लेकर तीर के मानिन्द पार हो गया, मुग़ल सरदार नदी उतरने की कोशिश ही मे थे कि राणा के भाई सक्ता जी ने जिसके साथ हुजूर ने इतने इहसान किए थे उन दोनों पर हमला किया और दोनों को मार गिराया।

अकबर । (क्रोधपूर्वक) सक्ता से यह दग़ाबाज़ी ? तुमने उसे क्या सज़ा दी ?

सलीम ! खुदावन्द, उसने मुझसे जाँ बख्शी का क़ौल लेकर कुल सहीह हाल कह दिया इसलिये मैंने उसे मुवाफ़ कर दिया मगर उसे और उसके कुल सक्तावंशी सरदारों को शाही मुलाज़िमत से अलाहदः कर दिया।

अकबर । खूब किया, इस जङ्ग में कितने राजपूत खेत रहे ?

सलीम । बाईस हजार फौज लेकर राना ने चढ़ाई की थी जिनमें से सिर्फ आठ हज़ार जीते फिरे।

अकबर । शाबाश—हां फिर क्या हुआ ?

सलीम । फिर हम लोग फ़तह का डङ्का बजाते शहर में दाख़िल हुए मगर वहाँ धरा क्या था। सारा शहर वीरान, जङ्गल हो रहा है कहीं किसी का पता नहीं, कुछ भी हाथ न आया और उसी जङ्गलिस्तान में हमारी फ़ौज पड़ी है। बक़ौल शख़्से कि "बकुला मारे पंख हाथ।"

अकबर । शहर की यह हालत क्यों हुई ?

सलीम । सुना गया है कि बरसों पहिले से प्रताप ने सारी बस्तियों को उजाड़ कर दिया था ताकि दुशमन अगर फ़तेहयाब भी हों तो कुछ न पाएँ। तमाम बाशिन्दगान को जङ्गल और पहाड़ों में रहने का हुक्म था और खुद कभी कभी आ कर तहक़ीकात करता था कि उसके हुक्म की तामील हुई या नहीं। एक चरवाहा एक सबजः में अपनी भेंड़ चराता पाया गया—फ़ौरन उसे फाँसी लटकवा दिया। इस सख़्ती के साथ उसने मेवाड़ ऐसे खुशनुमा मुल्क को जङ्गल बना दिया है।

अकबर । आफ़रीं है इस दूरन्देशी पर, मगर तुम लोगों ने जङ्गलों में क्यों नहीं उसका पीछा किया ?

सलीम । जहाँपनाह ! एक तो उस पहाड़ी जङ्गल में हम लोगों का नावाक़फ़ियत की हालत में घुसना नामुनासिब, दूसरे मौसिमें बरसात शुरू, इस वक़् तो नामुमकिन ही था।

अकबर । कुछ मुज़ायक़ः नहीं, बाद बरसात सही। मुझे मुल्क मेवाड़ की फ़तह से सीमोज़र की ख़्वाहिश नहीं; मुल्कगीरी की ख्वाहिश नहीं, सिर्फ़ बातों की आन है। मगर देखना ख़बरदार जिसमें प्रताप ऐसा बहादुर शख़्स मारा न जाय, ज़िन्दः गिरफ़्तार हो। आहा ! क्या ऐसा बहादुर भी रूए जमीन पर मौजूद है ? अबरक,

तू खुशनसीब है कि तुझे ऐसा दुश्मन मिला।

पृथ्वीराज। (मन में) आहा!

साधु सराहैं साधुता जती जोगिता जान।
रहिमन सांचे सूर को बैरिहु करैं बखान॥

(पटाक्षेप।)

द्वितीय गर्भांक।

(मेवाड़-जंगल-गिरिगुहा का बाहरी प्रान्त।)

(एक पत्थर की चट्टान को काट छाँट कर सिंहासन बनाया हुआ, उस पर राणा जी विराजमान, ताड़ के पत्तों का छत्र लगा, चँवर होता, नकीब चोबदार आदि खड़े सरदारगण यथा यथा स्थान भूमि पर बैठे, दाहिनी ओर सिंहासन के पास भीलों का सरदार काछा काछे सिर पर लाल पाग मोर का पंख खोसे हाथ में धनुष बान लिए।)

कविराजा—

दिन दिन बढ़ै प्रताप प्रताप प्रताप ईस के।
होइ नास जम पास बास सब यवन कीस के॥
फिर मिवार सुखसार गरैं जयमाल विराजैं।
देव रवनि यह अवनि यवनि बिनु सब दिन छाजैं॥
हे देव दमन अशरन शरन अब न बिलम मन में धरहु।
करि कृपा आर्य गौरव बहुरि थापि दुःख दारिद हरहु॥

प्रतापसिंह। मेरे प्यारे भाइयो! मेरे कारण तुम लोगों को बड़ा क्लेश उठाना पड़ा है। आहा! कहाँ तुम लोग राज प्रसाद के रहनेवाले, राजसुख से सुखी और कहाँ कंटक-मय मरु देश, पहाड़ों का घूमना, चट्टानों पर सोना, उस पर भी स्वच्छन्दता की नींद नहीं। एक स्थान पर

जम कर रहना होता तो भी भला कुछ आराम के सामान हो जाते पर यहाँ इसका भी ठिकाना नहीं। आज यहाँ हैं तो यह निश्चय नहीं कि कल कहाँ कितने कोसों पर जङ्गल काट कर बैठने योग्य स्थान निकालना होगा—कल कैसा? यह भी तो स्थिर नहीं कि खाया यहाँ है तो हाथ कहाँ चलकर धोना होगा? अहा! जहाँ हजारों को भोजन देकर भोजन करते थे वहाँ अब अपने और अपने बच्चों के पेट भरने के लिये लालायित होना पड़ता है। अहा! बहादुर भाइयो! जो तुमने भी आज यवन बादशाहों की गुलामी स्वीकार की होती तो इन शिलाखण्डों के बदले रत्नजटित सिंहासनों पर विराजमान होते, बड़े बड़े अभिमानी नरेश तुम्हारे चरणों पर अपने मुकुट झुलाते, संसार को यावत सुख सामग्री तुम्हारे आगे हाथ जोड़े खड़ी रहती और जो कहीं बादशाही महलों में अपनी बहिनों को पहुँचाए होते तब तो फिर कहना ही क्या था, सालों से बढ़ कर किस का आदर होता है? जहाँ दिल्ली पहुँचते कि फिर तुम्हीं तुम दिखाई देते। पर हाय! मैं क्या करूँ, मेरी मोटी बुद्धि इन क्षणिक सुखों को सुख कह कर नहीं मानती। मैं गँवार आदमी, मुझे यह जंगल का वास उन शाही महलों से कहीं बढ़कर सुखद जान पड़ता है। आहा! हमारा हृदय मन्दिर जो पवित्र आर्यगौरव वासना से पूरित है इन बाहरी शोभाओं से मोहित नहीं होता। मैं क्या करूँ मेरा मन उन सुखद सामग्रियों को दुःखद करके मानता है परन्तु तुम लोग क्यों मेरे लिये कष्ट उठाते हो? अपने जीवन को क्यों व्यर्थ गँवाते हो?

मुझे यहीं यों ही भटकने दो, तुम लोग अपने कामों को देखो न ? हम तुम लोगों को सुखी देख कर सन्तुष्ट होंगे।

एक क्षत्रिय । (क्रोधपूर्वक तलवार को राणा के सामने फेंककर) महाराज ! यह लीजिए । जिस तलवार को हमने शत्रुओं के सिर जुदा करने के लिए बहुत दिनों से तेज़ कर रक्खा था, आज उसी से हम लोगों का सिर अपने हाथ से जुदा कर दीजिए, जो तलवार शत्रुओं के रक्त पान की प्यासी, देखिए मा दुर्गा की जीभ की भाँति लपलपा रही है, उसकी प्यास को हमी लोगों के रुधिर से बुझाइए । पर महाराज, इन हृदयबेधी वाक्यबाणों का प्रयोग न कीजिए, जो स्वाधीनता का स्वर्गीय सुख हम लोग यहाँ भोग रहे हैं क्या कभी बड़े से बड़े पराश्रित राजसिंहासन पर बैठने से भी वह सुख प्राप्त हो सकता है ? छि ! मरना तो एक दिन हई है पर क्या उसके भय से आज ही हम अपने को बेंच दें ? क्या दासत्व स्वीकार करने से हमारा मृत्युभय जाता रहेगा ? फिर महाराज ! जब मरना ही है तो मान खो कर मरने से क्या ?

"अहमद मोहि न सुहाय, अमिय पिलावत मान बिनु ।
जो विष देइ बुलाय, मान सहित मरिबो भलो ॥"

भीलराज । सुणो राणा जी ! हम लोगों के पुरखों ने जान दे कर इस राज का मान बचाया है हम लोगों के जीते जी कभी यह न होने पावेगा । दूसरे की कौन कहै आप भी चाहें तो हमारी स्वाधीनता को नहीं बेच सकते, आपका जी चाहे तो जा कर बादशाह से सुलह कर

लीजिए पर हम भील लोग तो प्रान रहते कभी सिवाय हिन्दूपति के दूसरे किसी को गुलामी नहीं करने के।

प्रतापसिंह। धन्य आर्य वीर, धन्य! हम तुम लोगों से ऐसे ही उत्तर की आशा रखते थे, तुम लोगों के ऐसे वीरों के सहायक रहते हमें पूरा विश्वास है कि हमारी स्वाधीनता को कभी कोई छू भी न सकेगा।

मान रहै तौ प्रान, मानहीन जीवन वृथा।
राखो दृढ़ करि मान, जौ जीवन चाहौ सुखद॥

(रसोईदार का प्रवेश)

रसोइया। अन्नदाता, कांसा * तयार है।

प्रताप। लाओ, यहीं ले आओ—

(रसोइया एक पत्थर के बड़े थाल में कुछ वन्य फल तथा बहुत से पत्ते के दोनों में उबाले हुए शाक और वृक्षों की जड़ रख कर लाता है, स्वयं राणा तथा सब क्षत्रिय सरदार एक ही थाल में बैठते हैं।)

(नेपथ्य में गान)

जो पै मिलै तीन दिन बीते।
कन्द मूल फल शाक उबाले अनायास सुखहीते॥
बिना निहोरे, बिनु सेवकाई, सुख स्वतंत्रता साने।
तो उन पै जग की सब सम्पति वारि सुधा सम माने॥
राज साज, पकवान रसीले, धन सम्पत्ति बड़ाई।
सबही तुच्छ, तुच्छतम निहचय निज मर्याद गँवाई॥
बन रजधानी, महल गिरि गुहा, फूल आभरन सोहैं॥
धर्म हेतु दुख सहत खुसी ते देव बधू लखि मोहैं।

* कांसा—राजाओं के यहाँ भोजन के थाल को कांसा कहते हैं

(ज्योंही सब लोग ग्रास उठाते हैं त्योंही एक सैनिक घबराया हुआ आता है)

सैनिक । (हाथ जोड़कर) घणीखमा, अन्नदाता जी बड़ी भारी मुसलमान सेना इधर को उमड़ी चली आ रही है।

प्रताप । (भोजन छोड़ दर्प के साथ खड़े हो और तलवार खींच कर) कितनी दूर है ?

सैनिक । धर्मावतार ! अभी आध कोस पर होगी ।

प्रताप । कुछ चिन्ता नहीं । बहादुर सरदारो ! आप लोग दु खी न हों, अभी तो पाँच ही बेर परोसी थाल छोड़नी पड़ी है जो सौ बेर भी छोड़नी पड़ै तो क्या चिन्ता है ! अब इस स्थान को अभी छोड़ देना चाहिए । रामसिंह, आप स्त्रियों को लेकर जंगली रास्ते से आगे बढ़ैं, हम लोग पीछे पीछे आते हैं, यदि शत्रु पास पहुँच भी जांयगे तो हम लोग थोड़ी देर तक अटका रक्खेंगे तब तक आप स्त्रियों को सुरक्षित स्थान में पहुँचा दीजिएगा।

(नेपथ्य में)

धन तुव हृदय प्रताप, तजे सबै जग के सुखनि।
सहत दुसह संताप, पै न तजत निज धर्म हठ ॥ १ ॥

(एक ओर से प्रतापसिंह तथा सरदारों का और दूसरी ओर से रामसिंह का बेग से जाना ।)

तृतीय गर्भाङ्क ।

(स्थान-जंगली कुंज-एक स्वच्छ शिलाखंड ।)

(मालती और गुलाबसिंह ।)

गुलाब । प्यारी मालती ! तुम हमारे कारन बड़े दुःख उठा रही हो ? आहा ! यह सुकुमार अंग और यह कठिन तापसव्रत !

मालती। देखो जी, तुम हमें बार बार लजाया न करो, भला मैंने ऐसा क्या किया है जो तुम सदा ऐसा ही कहा करते हो? धन्य तो है तुम्हारा असीम साहस!

गुलाब। हमारा साहस? हमारा साहस भी क्या अपने मन से है? उसकी जड़ भी तो तुम्हीं हौ।

मालती। चलो चलो, रहने दो, बहुत बातें न बनाओ। देखो हमने यह जंगली फूलों की एक माला बनाई है, लाओ तुम्हें पहिरावैं; देखैं कैसी लगती है।

गुलाब। (अलग खड़े होकर) नहीं–नहीं–मालती! अभी नहीं

जब लौं निज बल को फल इनको नाहि चखाऊं।
म्लेच्छ ध्वजा को काटि न जब लौं भूमि गिराऊं॥
आर्य धर्म की जय ध्वनि सों सब जगत कपाँऊं।
निष्कंटक मेवार देश जब लौं न बनाऊं।
तब लौं मुख करि सामुहे तुम सों कबहुं न भाखिहौं।
अरु कोमल कर परस को मन मैं नहिं अभिलाषिहौं॥

(नेपथ्य में)

वीर हृदय जौ कछु कहै फबै सबै तेहि सांच।
पै न फबै सुख बिलसिबो जब लौं बुझै न आंच॥

गुलाब। (धीरे से, दाँत के नीचे जीभ दाब कर) अरे कविराज जी को हम लोगों का यहाँ रहना कैसे विदित हो गया! देखो कैसी चितावनी दे रहे हैं? अच्छा प्यारी मालती! अब बिदा दो, मुझे छद्म वेष करके उदयपुर जाना है, क्योंकि बरसात आ गई, देखूं मुसलमानी सेना क्या कर रही है।

मालती। हाँ, इसमें देर न करना चाहिए, मा दुर्गा सदा तुम्हारी रक्षा करैं।

(गुलाबसिंह धीरे धीरे सतृष्णनेत्र मालती की ओर मुड़ मुड़ कर देखते हुए जाते हैं ।)

मालती । धन्य गुलाबसिंह धन्य ! यह तुम्हारा ही काम है । इस कठिन परीक्षा में ठहरना सहज नहीं है । हाय ! मुझ अभागिनी के कारन तुम्हें इतने कष्ट भोगने पड़ते हैं । पर मालती ! तू भी धन्य है जो तूने अपना हृदय ऐसे वीर हृदय को सौंपा है । (आँखों में आँसू डबडबा आते हैं) आहा ! कितने साध से यह बनैले फूलों की माला गाँथी थी पर हाय ! एक क्षण भी मैं इसे उनके गले में पहिना कर अपनी आँखों को ठंढी न कर सकी ! तो चलैं अब इसे मा विपत्तिविदारिनी ही के चरणों में अर्पण करके उनकी मंगल प्रार्थना करें । (चौंक कर) और क्या उन्हें इस विपत्ति में अकेले ही जाने देना चाहिए ? नहीं नहीं मैं भी चुपचाप उनके पीछे पीछे भेष बदल कर चलूँ ।

(नेपथ्य में)

धन्य देश मेवार वारिये तुम पै सब जग ।
जहँ फूले ये फूल किये सौरभ मय सब मग ॥
धन्य वीर परताप थाप तुव न्याय विराजै ।
जासु सहायक ऐसे तिन्हें अकर कहा काजै ॥
रे कवि तुव जन्म सुफल भयो करि सेवकाई वीर की ।
धन वाणी कहि विरुदावली धर्म धुरंधर धीर की ॥१॥

(मालती का प्रस्थान ।)



चतुर्थ गर्भाङ्क

(स्थान–जंगली प्रांत, राजकुमार, राजकुमारी, भील बालक बालिका तथा राजपूत बालक।)

(राजकुमार के सिर पर फूलों की कलगी तुर्रा और गले में जंगली फूलों के हार-राजकुमारी के सब अंगों में फूलों का शृंगार–कुमार पत्थर के शिलाखंड पर बैठे हैं, दो भील बालक बांस के मोटे मोटे लट्ठों के आसा बनाकर आगे खड़े हैं, एक ताड़ का छाता राजछत्र के बदले में लिए पीछे खड़ा है)

एक चोबदार। (आगे बढ़कर) घणीखमा अन्नदाता, दिल्ली से पाच्छाह का एक दूत आया है।

कुमार। (बेपर्वाई से) आने दो।

(सन को रंग कर कृत्रिम डाढ़ी लगाए एक दूत का प्रवेश।)

दूत। (सलाम करके) हजूर, हमको दिल्ली के पाच्छाह छलामत भेजा है।

कुमार। (टेढ़ी दृष्टि से देख कर) अच्छा, तुम्हारा पाच्छा क्या बोला?

दूत। पाच्छा बोला है कि आप हम से क्यों लड़ाई करता है। इसमें बर नहीं आवेगा इससे हम जो चाहा था उसके करने से हम आपको सब से बड़ा मनसब देगा!

कुमार। (बड़े ही क्रोध से) कोई है? इस बेअदब बेतमीज़ को मुँह काला करके हमारे शहर से निकाल देव।

(चारों ओर से सब लड़के "जो हुकुम" "जो हुकुम" करके कूदते ताली बजाने इकट्ठे हो जाते हैं और दूत को मारते घसीटते नाचते कूदते ले जाते हैं। दूत दोहाई दोहाई पुकारता जाता है।)

कुमार। कोई है? सेनापति को बुलाओ।

एक चोबदार। जो हुकुम अन्नदाता।

(जाता है और सेनापति को लाता है। सेनापति चिथड़े का परतला, सिर में लाल कपड़े की पट्टी बाँधे कमर में तलवार लटकती आकर प्रणाम करके अदब से खड़ा होता है।)

कुमार। देखो सेनापति, डिल्ली का पाच्छा अब बड़ी बेअदबी करने लगा, उस पर फ़ौज लेकर अभी चढ़ाई करो!

सेनापति। जो हुकुम अन्नदाता—

(ताड़ की पोपली बिगुल की तरह बजाता है। चारों ओर से कूद कूद सब लड़के इकट्ठे हो जाते हैं और एक ओर राजपूत बालक और दूसरी ओर भील बालक श्रेणीबद्ध होकर फ़ौज की नाईं खड़े हो जाते हैं। सेनापति सबों से क़वायद कराता है और कुमार की सलामी उतरवा कर आगे आगे सेनापति पीछे पीछे श्रेणीबद्ध सेना जाती है।)

राजकुमारी। (बालिकाओं के प्रति)। अरी तुम सब खड़ी मुँह क्या देख रही हो, जब तक फौज दिल्ली जीत कर आवे तुम सब दर्बार के आगे नाचो गाओ। (सब लड़कियाँ मंडप बाँध कर नाचती गाती हैं।)

जियो जियो मेवाड़ ना महाराजा—जियो—
मेवाड़ ना महाराजा, मेवाड़ ना महाराजा।
जियो जियो।
राजपूत कुल ना रखवारा भारत ना सिरताजा।
जियो जियो।
लाओ लाओ सइयो, चुनि चुनि कलियाँ,
रंग रंग अभरन काजा।
अपणा धणी ने रचि पहिरावां मंगल रूप विराजा।
जियो जियो।

("एक लिङ्गजी की जय" "मेवाड़ की जय" "राना की जय" इत्यादि कोलाहल करते नाचते कूदते लड़कों की सेना का प्रवेश।)

(सब नाचते और गाते हैं)

"सिपाहियाँ नो कलो बनती आवेरे महाराजा।
आवी लागी दरवा पेले काठे रे महाराजा॥
नीला पीला तंबुड़ा खींचावोरे महाराजा।
रूपा केरी खूटा धमकावो रे महाराजा॥
सोना केरी डोरें बिछावो रे महाराजा।
गोड़ीला बलाओ रावली पाएगा रे महाराजा॥
गोड़ीला छुड़ाओ हरआ मुंगेरे महाराजा।
हाथीड़ा नीरांवो छूटा सुरमा रे महाराजा॥
ऊटीआं ने नाखो कड़वा नीवां रे महाराजा।
सरदारा ने देवो चावल चोखा रे महाराजा॥
सीपाआने देवो तोल मां भाता रे महाराजा।
फोजाँ में तो वतरी बाजा बाजे रे महाराजा॥
बाजारे बाजे भवाआँ नाचेरे महाराजा। *"

सेनापति। (आगे बढ़कर कुमार को सलाम करके) घणी खमा अन्नदाता, डिल्ली की फतह मोमारक।

कुमार। (प्रसन्नता पूर्वक) साबास, साबास, डिल्ली फतह कर आए! पाच्छा क्या हुआ?

सेनापति। धर्मावतार, पाच्छा श्री जी हुजूर की डर से आगरे भाग गया।

कुमार। कुछ पर्वा नहीं, भागने वाले को भागने दो।

---

* यह भीलों की गीत मित्रवर कुअर योधसिह मेहता द्वारा प्राप्त हुई है।

एक भील बालक ।(आगे बढ़कर) अब हम दरबार को तिलक करेंगे ।

एक राजपूत बालक । (आगे बढ़ कर) नहीं नहीं, तुम मेवाड़ की गद्दी का तिलक नहीं कर सकते हो, डिल्ली के फतह का तिलक हम करेंगे, हम भाई बेटे हैं । (दोनों आपस में द्वंद युद्ध करते हैं । कुमार दोनों को छुड़ाते हैं ।)

कुमार । (राजपूत बालक से) सुनो भाई, आपस में लड़ते क्यों हो; तुम तो हमारे अंग ही हो, हमको तिलक हुआ तो तुमको हुआ । पर तिलक करने का अधिकार बहादुर भील सरदारों ही को है ।

(भील बालक "जय हिन्दू पति की" कहते और तिलक करते हैं । सब लोग नजर में फल, फूल, दही आदि पेश करते हैं और कुमार किसी को "पंच हजारी" किसी को 'सेह हजारी' किसी को 'हजारी' आदि पदवी वितरण करते हैं।)

(पटाक्षेप)

पञ्चम गर्भाङ्क ।

[स्थान—उदयपुर किले का एक भाग]

(पाँच चार मुसलमानों की गोष्ठी ।)

(कोई शराब के प्याले ढाल रहा है और कोई अफ़ीम घोल रहा है ।)

एक । (अफीम घोलते घोलते) अजी हज़रत अजब मनहूस जगह है—न कोई सैरगाह, न कोई दिल्लगी का शग़ल—जी घबरा गया—लाहौल वला क़ूवत ।

दूसरा । (शराब के झोंक में) और क्या जनाब, जहन्नुम है, जहन्नुम-न मालूम क्या क़िस्मत फूटी कि इस जंगलिस्तान में आ फँसे ।

तीसरा। (मोछों पर ताव फेरते हुए) हज़रत मेरी भी इतनी उम्र हुई, सैकड़ों ही जङ्ग इन्हीं हाथों फ़तह किए मगर जनाब, यह मायूसी, यह कोरा कोरा रहना तो कहीं भी नसीब न हुआ, एक फूटी कौड़ी भी हाथ न आई।

चौथा। भला यह तो फ़र्माइये, बी इलाहीजान से बड़े बड़े वादे कर आए थे-मीरसाहब अब उन्हें क्या मुंह दिखाइयेगा?

मीरसाहब। (रोना सा मुँह बना के) जनाब, कुछ न पूछिए मेरी तो इसी फ़िक्र में रूह फ़िना हुई जाती है—यार जो कहीं वहाँ ख़ाली हाथों गए तो वह बेभाव की पड़ेगी कि सर में एक बाल भी न रहने पावेगा।

ख़ाँ साहब। भाई, बन्दःदर्गाह तो घर में सेंद लगाएगा, बीबी साहबा की नथ तक बेचेगा मगर जनाब वहाँ झूठा नहीं बनने का—वहाँ तो जो कह आए हैं ख़ाली हाथ नहीं क़दम रखने का।

एक। और क्या मर्दों के यही मानी-"जाय लाख रहै साख।"

दूसरा। (उसे एक चपत जमा कर) अबे ओ साखवाले घन्ना सेठ के नाती, ज़रा अपनी टोपी तो संभाल, फिर लाख की फ़िकिर करना। बचों नामर्दों, अबे जो रण्डी ही के सिर न घहराए और उसी से न पुजाया तो मर्दानगी क्या? यार लोग भी कहीं टका दे कर कुछ काम करते होंगे।

तीसरा। (मोछों पर ताव फेरते फेरते) बहर हाल, यहाँ से तो ख़ाली हाथों घर चलना मसलहत नहीं।

(एक मुसलमान घबराया हुआ आता है)

आगन्तुक मुसलमान। अबे पहिले दाढ़ी मोंछें तो ख़ैरियत से घर पहुंचा तब दूसरी चीज़ों की फ़िक्र करना।

तीसरा । (चेहरे का रंग फ़क़ हो जाता है) ऐं—ऐं—क्या कहा ? दाढ़ी मूँछ ? अरे क्या हुआ ? क्यों म्याँ ग़नीम आए क्या ?

आ० मुसलमान । पूछता है ग़नीम आए ? अबे आए कि आ पहुँचे—दम साइत में हम सभों का वारा न्यारा है ।

सब । तोबः तोबः या इलाही तू ही मुईनो मददगार है ।

(नेपथ्य में "हिन्दूपति की जय" का कोलाहल ।)

तीसरा । अरे यार-उस्तरा कहां गया—अरे जल्दी करो नहीं सब मारे जायँगे ।

मीर । हाय ! बी इलाहीजान, तुमने पहिले ही कहा था ।

ख़ाँ साहब । (मीर को एक चपत लगा कर) अबे तुझे इलाही जान की ही पड़ी है—अरे कलुवा कम्बख़्त मेरी बीबी से निकाह कर लेगा—हाय ! मैं क्या करूँ ?

एक । हाय ! बरसात में यह जङ्गली रास्ते कैसे तै होंगे ? अरे रास्ते का निशान भी तो मिट गया है—या ख़ुदा क्या जंगलिस्तान में कुत्तों की मौत मरना पड़ेगा ?

(नेपथ्य में "एकलिङ्ग जी की जय" और "अल्ला हो अकबर" का कोलाहल और भी निकट आ जाता है और सब गिरते काँपते हुए भागते हैं ।)

षष्ठ गर्भाङ्क ।

[स्थान—रणक्षेत्र]

(कोई सिर कटा, कोई हाथ कटा, कोई मरा, कोई सिसकता पड़ा है—शवों की ढेर में जीते और मरों का पता भी नहीं लगता, मुमुर्षुओं का आर्तनाद गूँज रहा है—एक सन्यासिनी आकर शवों में किसी को ढूंढ रही है ।)

सन्यासिनी। (उदासी और उत्साह के साथ।)

" बताय दे मेरे जोगिया को किन्ने बिलमाया रे–बताय दे मेरे—उनहीं पर जोग कमाया रे। अङ्ग भभूत गले मृगछाला घर घर अलख जगाया रे। "

गुलाबसिंह। (मुमुर्षु अवस्था में पड़ा हुआ टूटे फूटे स्वर से) हैं—यह असमय अमृत वर्षा कहाँ से ? मन ! अपने को सम्भाल—भला इस भयानक रणभूमि में प्यारी मालती कहां ?

मालती। (दौड़ कर गुलाबसिंह के मस्तक को अपनी गोद में रख कर) नाथ आप घबड़ायँ नहीं, सचमुच मैं ही हूँ-मालती। अब आपका शरीर कैसा है ?

गुलाबसिंह। बहुत अच्छा–जो कसर थी वह भी पूरी हुई-आहा !

जनमभूमि अरु स्वामि हित रण गङ्गा में न्हाय।
तजत प्राण प्रिय अंक में मो सम कौन लखाय ॥

(राणा जी राजवैद्य को साथ में लिवाए हुए घबराए से आते हैं)

राणा। वैद्यराज ! आज जो आप गुलाबसिंह को बचा सकें तो मैं आपका सदा ऋणी रहूंगा—आहा, आज के युद्ध में गुलाबसिंह की वीरता प्रशंसनीय थी, और मुझे बचाने ही में उस की यह दशा हुई। गुलाबसिंह की रक्षा होने से मुझे चित्तौर की रक्षा से भी अधिक आनन्द प्राप्त होगा।

वैद्य। हुकुम अन्नदाता, मेरे पास वह जड़ी बूटी है कि जो तन में प्राण होगा तो बचने में कोई सन्देह नहीं।

राणा। (मालती को देख कर) बेटी मालती ! तू यहाँ कहाँ ? धन्य तेरा प्रेम।

गुलाबसिंह। (राणा का पैर छू कर टूटे फूटे स्वर से) स्वामिन्

आपने क्यों कष्ट किया ? आहा मुझ से तुच्छ पर इतनी कृपा ।

वैद्य । (गुलाबसिंह को नाड़ी तथा घावों को देखते हैं ।)

(नेपथ्य में गान)

जियो जुग जुग ऐसे वीर ।
जे निज देश, स्वामि हित कारन गिनत न अपनी पीर ॥
धन धन ते रमनी जे पति सों मिलत मनौं पय नीर ।
धन्य स्वामि जिनके सेवक हित निस दिन प्राण अधीर ॥

(धीरे धीरे परदा गिरता है ।)

सप्तम अंक।

प्रथम गर्भाङ्क।

(स्थान—उदयपुर का जंगली मैदान।)

(बादशाही फ़ौज—मुहब्बत खाँ और फ़रीद खाँ।)

मुहब्बतखाँ। छिः तुम लोगों ने क्या बहादुरी का नाम डुबाया उदयपुर दुश्मनों के हाथ छोड़ते तुम्हें शर्म न आई?

फ़रीदखां। हुज़ूर बजा इर्शाद, मगर मौसिमे बरसात इस मुल्क में हम अजनबियों के क़यामत का सामान है, एक तो कम्बख़्त नहरू का मर्ज़ क़रीब क़रीब निस्फ़ फ़ौज के तंग किए था, दूसरे हम लोग यह समझ कर कि अब शिकस्त पर शिकस्त खा कर ये मर्दूद पस्त हो गए होंगे इत्मीनान से थे और कहीं इनका नामोनिशान भी न था, मगर खुदा की पनाह, न जाने किस खोह से ये टिड्डी दल की तरह हम लोगों पर आ गिरे, हालाँ कि हम लोगों के बहादुरों ने जी छोड़ कर मुक़ाबिला किया, मगर उन बेशुमार जर्रार राजपूतों और भीलों के सामने कहाँ तक ठहर सकते थे, पैर उखड़ गए, जनाबेआली, हम लोग तो खुद ही निहायत नादिम हैं।

मुहब्बतखाँ। ख़ैर कुछ मुज़ायक़ः नहीं, "गुज़श्तः रा सलवात आइन्दः रा इहतियात" हालाँकि जहांपनाह निहायत ही ग़ज़बनाक थे मगर हम लोगों ने उनके गुस्से के यही वजूहात दिखला कर फ़रो कराया, अब हुक्म दिया है कि अगर इस जंग में सच्ची बहादुरी का सुबूत मिलेगा और उदयपुर फ़तह करके आवेंगे तो सब

गुनाह मुआफ़ फ़र्माए जायँगे और आला मनसब दिए जायँगे, वर्नः हमारे रूबरू आने की ज़ुरूरत नहीं ।

फ़रीदखाँ। खुदावन्द, इन्शाअल्लाह तआला अब ऐसा ही होगा।

(नेपथ्य में "राण ाप्रतापसिंह की जय" का कोलाहल ।)

मुहब्बतखाँ । (फ़ौज की ओर फिर कर) देखो बहादुरो, दुश्मनों की फ़ौज आ पहुँची, अब तुम्हारे आज़माइश का वक्त़ है, नमक अदा करने और बिहिश्त हासिल करने का यही वक्त़ है ।

(नेपथ्य से गुलाबसिंह अट्टाट्टहास्य करते हुए)

"और दोज़ख़ में जाने का यही वक्त़ है"

(मुसलमान सेना "काफ़िर काफ़िर" पुकारती हुई बड़े जोश के साथ एक ओर से आती है और दूसरी ओर से राणा की सेना आती है, आगे आगे कविराजा जी ।)

कविराजा—

चलो चलो सब वीर चलो घन घोर युद्ध करि ।
मेटैं हिय की कसक यवन हिय आजु पांय दरि ॥
देखो देखो मातु कालिका जीभ निकारैं ।
यवन रुधिर प्यासी सुलोल जिह्वा चटकारैं ॥
वह देखो तुव प्रभू प्रताप निहारत तुव मुख ।
है तुम्हरे ही हाथ आत्मगौरव मेवार सुख ॥
निज पुरुषन को करौ याद जिन सह्यो सबै दुख ।
पै न तज्यो स्वाधीनपनो छोड़यो जग के सुख ॥
बढ़ौ बढ़ौ सब वीर आर्य्य ध्वज नभ फहरावैं ।
चढ़ौ चढ़ौ सब वीर यवन ध्वज धूरि मिलावैं ॥
लरौ लरौ सब वीर आर्य पौरुष दिखरावैं ।
धरौ धरौ सब वीर यवन धरि दास बनावैं ॥

तरौ तरौ सब वीर युद्ध गंगा में न्हावैं।
करौ करौ सब वीर अकर कर कीर्ति बढ़ावैं॥
अरौ अरौ सब वीर यवन पग आजु डिगावैं।
परौ परौ सब वीर शत्रु के पीछे धावैं॥
हरौ हरौ सब वीर देस दुख आजु नसावैं।
मरौ मरौ सब वीर—

(अचानक नेपथ्य से एक गोली आ कर कविराजा को लगती है और गिरते गिरते)

कविराजा। —स्वर्ग चलि आजु बसावैं।

(सब आवेश में आकर नेपथ्य में शाही फ़ौज पर टूटते और कुछ लोग कविराजा के मृत शरीर को लेकर नाचते कूदते हैं।)

क्षत्रियगण। चलो, चलो "स्वर्ग चलि आजु बसावैं"

(नेपथ्य में "श्री एकलिङ्ग की जय" "अल्लाहो अकबर" का कोलाहल।)

(पटाक्षेप)

द्वितीय गर्भाङ्क।

(स्थान जंगली मार्ग—कई भील सिर पर बड़े बड़े पिटारे लिए घबराए हुए आते हैं।)

एक भील। चलो, चलो भाइयो पैर बढ़ाए चलो।

(एक पिटारे के भीतर से रानी)

अरे दर्बार कहाँ हैं ? उनकी क्या दशा है ?

दूसरा भील। चुप, चुप, माजी चुप, अभी दुश्मन दूर नहीं हैं, अभी साँस न लेना।

तीसरा भील। माँ, दर्बार के लिये कुछ चिन्ता न करना, जब तक एक भी भील बच्चा जीता रहेगा आप लोगों में से किसी का एक बाल भी न खसने पावेगा।

(नेपथ्य में "धन्य स्वामिभक्ति")

सब भील। अरे कौन आया? चलो चलो जल्दी भागें।

(सब भागते हैं—वीरवेग से बहुत जख्मी गुलाबसिंह का प्रवेश।)

गुलाबसिंह। धन्य स्वामिभक्ति धन्य, आहा ये गँवार इस समय प्रभु की कैसी सेवा कर रहे हैं! धिक्कार है हम लोगों को कि प्रभु के एक काम न आए। न जाने कहाँ दरबार पड़ गए हैं, बहुत खोजा कहीं पता न लगा, हाय! हे दीनानाथ, प्रतापसिंह की रक्षा करना। इस समय हिन्दू मान गौरव का एक वही आश्रय है, उसे न छीन लेना।

(नेपथ्य से)

छिः! प्रभु को अकेले छोड़ कर कायरों की तरह बड़ बड़ा रहे हो? अरे जाओ, जल्दी जाओ, या तो राणा की रक्षा करो या वहीं तुम भी उनका साथ दो।

गुलाबसिंह। (चौंक कर) हैं! इस असमय में यह अमृत वर्षा किसने की? (नेपथ्य की ओर देख कर) आहा! प्यारी मालती के बिना और किसका इतना उदार हृदय होगा? धिक्कार है हमको कि दरबार विपत्ति में फँसे हैं और हम प्राण लेकर यहाँ खड़े हैं।

(जाने के लिये उद्यत होता है और आगे की ओर देख कर प्रसन्नता पूर्वक)

अहाहा! वह देखो राणा जी तो भील वेष में चले आ

रहे हैं, जान पड़ता है प्रभुभक्त भीलों ने अपने को राणा बना, दर्बार को अपने वेष में बचाया, धन्य भील जाति धन्य—आज तुम्हारा जन्म सुफल हुआ, अब जो तुम्हें नीच कहै वह आप नीच—चलैं हम भी प्रभु की सेवा करैं। (गुलाबसिंह जाता है।)

तृतीय गर्भाङ्क।

स्थान घोर जंगल—एक गुफा की चट्टान पर राणा जी सोए हैं और रानी पैर दाब रही है)

रानी। (मन ही मन) हाय! यह देवतुल्य शरीर इस घोर जंगल में इस पत्थर की सेज पर सोने योग्य है? जिसे सैकड़ों ही दास दासी अपनी सेवा से प्रसन्न नहीं कर सकते थे उसे मैं, जिसे कभी सेवकाई सीखने का काम न पड़ा, कैसे प्रसन्न कर सकती हूं? तिस पर इन बालकों के लालन पालन से और भी समय नहीं मिलता कि इनकी कुछ सेवा कर सकूँ (राणा की ओर सजल नेत्र से देख कर) नाथ! इस अभागिनी के कारण आप को बहुत दुःख सहने पड़ते हैं—क्षमा करना, हाय! मैं तुम्हारी कुछ सेवा नहीं कर सकती, मैं जब से तुम्हारी सेवा में आई दुःख ही देती रही, हाय! मैं इसका क्या उत्तर परमेश्वर को दूँगी? जो मैं अभागिन आज मर भी गई होती तो तुम्हारी बहुत चिन्ता कम हो जाती, मेरी ही रक्षा के लिये तुम्हें हैरान रहना पड़ता है (आँसू पोंछती है) (राजकुमारी आकर रानी के गले से लिपट कर) मां, बड़ी भूख लगी है।

रानी । बेटी, अभी थोड़ी ही देर न हुई है कि तुमने खाया है ।

रा० कु० । हूँ हूँ आधी ही तो रोटी दी थी, उससे पेट तो भरा ही नहीं, फिर बड़ी भूख लगी है ।

रानी । अच्छा, हौरा न कर, नहीं दर्बार की नींद खुल जायगी।

रा० कु० । (धीरे से) मा, दर्बार उदयपुर कब चलेंगे ?

रानी । (आँखों में आँसू भर कर) जब भाग ले जाय ।

रा० कु० । अच्छा खाने को तो दे, अब भूख नहीं सही जाती ।

रानी । प्रान मत खा, जा उस पत्थर के नीचे आधी रोटी ढकी है उसे खा न ।

रा० कु० । मा, घास की रोटी और कब तक खानी होगी, यह रोटी तो रूखी खाई नहीं जाती । और कुछ नहीं है ?

रानी । (आँख डबडबा कर)बेटी, जब जो मिले तब उसे प्रसन्न हो कर खाना चाहिए, अन्न को ऐसा नहीं कहना ।

(राजकुमारी जाकर ज्योंही पत्थर उठाती है कि बिल्ली झपट कर उस आधी रोटी को भी खींच ले जाती है, राजकुमारी चीख कर रोने लगती है, रानी भी अपने वेग को नहीं रोक सकती फूट कर रो उठती है, राणा चौंक कर खड़े हो जाते हैं ।)

राणा । क्या हुआ ? क्या हुआ ? क्या दुश्मन आए क्या ? (राजकुमारी की ओर देख कर) बेटी तू क्यों इस तरह रो रही है ?

रा० कु० । (कुछ बोल नहीं सकती, रोती हुई उङ्गली से बिल्ली की ओर दिखाती है)

राणा । क्या तेरी रोटी बिल्ली उठा ले गई ।

रा०कु०। (राणा से लिपट कर रोते रोते) ब-ड़ी-भू-ख-ल-गी-है ।

राणा । (वेग पूर्वक आँसू रोक कर स्वगत) हाय, वह प्रताप का

हृदय जो कभी बड़े बड़े शत्रु दल से नहीं हिला, आज क्यों काँपा जाता है, जो आँखें बड़ी बड़ी विपत्तियों में फँसने से और बड़े बड़े दुःख पड़ने पर भी तर न हुईं आज उनमें स्वतः आँसू क्यों उमड़े आते हैं ? (रानी की ओर देखकर) भद्रे ! हमारे हिस्से की रोटी हो तो इसे देकर चुप कराओ, इसके रोने से तो हमारा कलेजा उमड़ा आता है।

(रानी निरुत्तर होती है।)

राणा। तो क्या तुम्हारे पास ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे इनकी भूख बुझा सको ?

(रानी बड़े वेग से रो उठती है।)

राणा। हाय, आज मेवाड़ के राणा की यह दशा हुई कि घास की जड़ की रोटियाँ भी उसके सन्तान को प्राप्त नहीं ? दीनानाथ ! हमने ऐसे कौन दुष्कर्म किए हैं जो ऐसे दारुण दुःख सहने पड़ते हैं ? प्रभु हो ! क्या मैं जो इस आर्यभूमि की रक्षा और गौरव बढ़ाने के लिये इतने कष्ट उठा रहा हूं, वे तुम्हें नहीं रुचते ? जाना, जाना, तुम्हारा कोप इस देश पर है इस लिये अपनी इच्छा के प्रतिकूल कार्य करने के कारण तुम प्रताप पर रुष्ट हो; पर नाथ ! इन अबोध बालकों ने क्या बिगाड़ा है जो तुम्हें इन पर भी दया नहीं आती ? (उन्मत्त की भाँति घूमता हुआ) अच्छा जाने दो, जाने दो, इस अभागे देश को रसातल में जाने दो, मुझे क्या, मैं भी न बोलूंगा, तुम्हारी यही इच्छा है तो यही सही—(कुछ ठहर कर) सारा देश अकबर के करतल है, सब क्षत्रिय

अपनी स्वतंत्रता स्वतंत्रतापूर्वक बेच रहे हैं, किसी को कुछ इसकी पर्वा ही नहीं है तो प्रताप, तू क्यों व्यर्थ प्रान दिए देता है—अरे अकेले तेरे किए क्या होगा? क्यों व्यर्थ इन कुसुम सुकुमार बालकों को कष्ट दे देकर सताता है? हाय, यह प्रताप का बज्र हृदय हिमालय की उच्चतम शिखर से गिराए जाने की चोट सह सकता है, वह बड़े बड़े गोले, गोलों, तीर कमान को छाती पर रोक सकता है, इस शरीर के टुकड़े टुकड़े कर डालो यदि मुँह से उफ़ भी निकले जबान खींच लेना, पर हाय, इन सुकुमार अबोध बच्चों के करुणा बचन तो सहे नहीं जाते, हृदय को छेदे डालते हैं—

सहे सबै दुख नेकु न अपुने प्रण तें हटके।
राज गयो, धन गयो, फिरे बन बन में भटके॥
बधु बांधव कटे आपुने सुतहिं कटायो।
राखि आपुनी टेक सबै तृण सरिस सहायो॥
पै हाय सही अब जात नहिं जीवत इन नैननि निरखि॥
इन दूध पीवते बालकनि रोटी हित रोवत बिलखि॥

प्रभु, अपनी सृष्टि को संभालो, आज अनहोनी हो रही है, बज्र हृदय प्रताप का हृदय आज द्रव हुआ जाता है, आज क्या होनहार है? (राजकुमारी रोते रोते सो जाती है) आहा! सचमुच नींद सी सच्ची सहचरी इस ससार में कोई नहीं। देवी! इस समय तुमने हमारा बड़ा उपकार किया, हम तुम्हें प्रणाम करते हैं (रानी से) तुम यहीं रहो, मैं देखूं जो कुछ मिल सकै तो लाऊँ, नहीं नींद खुलते ही फिर—

(नेपथ्य में)

अरे राणा जी कहां हैं, जल्दी उन्हें खबर दो, शत्रुओं को यहाँ का भी पता लग गया।

राणा। हाय अब नहीं सही जाती, और तो और इस भूख की मारी छोकरी को कैसे जगावें?

(घबराया हुआ बाहर जाता है।) (पटाक्षेप)

चतुर्थ गर्भाङ्क।

(स्थान दिल्ली—अकबर का मंत्रणागृह।)

(अकबर हाथ में एक पत्र लिए और पीछे पीछे ख़ानख़ाना का प्रवेश।)

अकबर। क्यों भाई रहीम, क्या फिर कभी वैसी खुशी हासिल होगी जो हमलोगों को बचपन में उस रेगिस्तान और जंगलों के खेल में हासिल होती थी? वह जेठ, बैसाख की धूप और वह तपी हुई रेत, हम लोगों को गोया क्वार कातिक की चाँदनी और जमुना किनारे की सर्द और मुलायम बालू जान पड़ती थी।

ख़ानख़ाना। और उस वक्त के उन खट्टमिट्ठे जंगली बेर, और चने के साग में जो मज़ा आता था वह इस वक्त इन इन्तिहा के लज़ीज़ खानों में नसीब नहीं। क्यों याद है, उस रोज जो दरख़्त से गिरे थे?

अकबर। खूब—अरे यार कुछ न पूछो, एक तो चोट लगी, दूसरे ख़ानबाबा बेभाव को लगे जमाने।

ख़ानख़ाना। (कुछ अप्रतिभ होकर) हमारे बाबा का स्वभाव ज़रा गुस्सावर था।

अकबर। हज़रत कुछ यह भी खबर है अगर उनको तालीम न

होतो तो आज हमको आपको यह दिन भी न मयस्सर आते—बाबा उस वक्त कैसी मुसीबत में थे, खानबाबा को उधर उनकी दिलजोई करनी, इधर हमलोगों की ख़बरगीरी करनी और साथ ही फिर सल्तनत हासिल करने की कोशिश करनी ।

(नेपथ्य में एकाएक बाजे बजने लगते हैं और तोपों की आवाज होने लगती है ।)

अकबर । हैं, यह एकबारगी क्या हुआ ?

(एक ख़लीता लिए हुए चोबदार का प्रवेश ।)

चोबदार । (ज़मीन चूम कर) निगाह रूबरू खुदावन्द नेआमत दौलत दराज़, जानोमाल की ख़ैर—अभी एक सांड़नी सवार उदयपुर से आया है, यह ख़लीता लाया है और सारे शहर में शादयाना मचाया है ।

(अकबर ख़लीता खोलकर पढ़ता है और मारे आनन्द के उछल पड़ता है ।)

(अकबर । (चोबदार को अपने हाथ की एक अँगूठी देकर । जाओ, अभी उस क़ासिद को सीमोज़र से मालामाल करो, जश्ने नौरोज़ की तयारी हो, शहर में आज रोशनी होने का हुक्म जारी हो ।

(चोबदार ज़मीन चूम कर जाता है)

ख़ानख़ाना । खुदावन्द, इस ख़त के मज़मून को जानने के लिये जी उमड़ा आता है ।

अकबर । (ख़त देते हुए) यह लो, मेरे हिन्द के बादशाह होने की सनद देखो ।

(ख़ानख़ाना पत्र लेकर पढ़ते हैं, पृथ्वीराज आते हुए दिखाई देते हैं ।)

पृथ्वीराज। (आप ही आप) सुना है आज सूर्यनारायण अपना राज्यासन निशिनाथ को दे कर बंगाले की खाड़ी में निवास के लिये चले जा रहे हैं। राणा प्रतापसिंह ने मुग़लराज से सन्धि का प्रस्ताव किया है। देखें यह बात कहाँ तक सही है।

(आगे बढ़ कर अकबर को सलाम करता है।)

अकबर। अल्लाह। आइए महाराज, लीजिए आप के राना उदयपुर ने यह सुलह का पैग़ाम दिया है। आपको मुबारक हो। (पत्र पृथ्वीराज को देता है।)

पृथ्वीराज। (पत्र पढ़ कर)

भूखे प्राण तजै भले, केशरि खर नहिं खाय।
चातक प्यासो ही रहै, बिना स्वाति न अघाय॥
बिना स्वाति न अघाय, हंस मोती ही खावै।
सती नारि पति बिना, तनिक नहिं चित्त डिगावै॥
त्यौं परताप न डिगै, हाेंय सबही किन रूखे।
अरि सनमुख नहि नवै, फिरै किन बन बन भूखे॥

अकबर। तो क्या आप को इस ख़त में कुछ शक है?

पृथ्वीराज। ख़ुदावन्द, पूरा शक है, क्योंकि—

बरु दिनकर पच्छिम उए, ग्रहपति पूर्व अथाँय।
सागर मर्यादा तजै, पंकज गगन लखाँय॥
पंकज गगन लखाँय, केसरी खर बरु खावै।
नभ नछत्र कर मिलैं, कदली फेरि फरावै॥
जब लौं तन मैं प्रान प्रान मैं बुद्धि रतिक भर।
तजै न हठ परताप, उऐ पच्छिम बरु दिनकर॥

अकबर। तो आपका शक किस तरह रफ़ः हो सकता है।

पृथ्वीराज। जब तक मैं खुद न तसदीक़ कर लूं।

अकबर। क्या मुज़ायक़ा है, आपका जैसे जी चाहे इतमीनान कर लें।

(पृथ्वीराज कृतज्ञतापूर्वक सलाम करके एक ओर से जाता है और दूसरी ओर से अकबर ख़ानख़ाना जाते हैं)

पञ्चम गर्भाङ्क।

(स्थान—अरवली पार्वत्य प्रान्त।)

(राणा प्रतापसिंह अकेले घूम रहे हैं।)

राणा। हाय, मेरा इतना किया सब नष्ट जाता है, एक काम न आया, जिस निर्दय दैव ने मुझे इस विपत्ति सागर में डाला उसी ने न जाने इस समय कैसी मोहिनी माया मेरे हृदय पर डाल रक्खी है जो मेरी बुद्धि में ऐसा विपर्यय हो रहा है—हाय, प्रताप, तू भी अब यवनों का दास बनेगा ! अरे तुझे भी अब दिल्ली में सलामी बजानी पड़ेगी ! देख, तेरे इस कर्म से आज कुलगुरु सूर्य नारायण का मुख भी मलिन हो रहा है। (सूर्य नारायण की ओर देख कर) देव ! रक्षा करो। अपने कुल—(गुलाबसिंह का एक पत्र लिए हुए प्रवेश।)

गुलाबसिंह—(हाथ जोड़ कर) घणी खमा अन्नदाता, दिल्ली से कुंवर पृथ्वीराज जी का यह पत्र ले कर एक दूत आया है।

राणा। (आग्रह पूर्वक) पढ़ो, पढ़ो, हमारे विपत्ति सहचर पृथ्वीराज क्या लिखते हैं।

स्वस्ति श्री अरबली बली जन आश्रयदायक।
जहाँ बसत परताप शत्रु हिय ताप विधायक॥

पराधीन दिल्ली बासी नित दास वृत्तिकर।
महा अधम पृथिराज छुअत तुव चरन पुण्यतर॥
अब कुशल कहाँ इत है रहो गई बिदा ह्वै कै कबै।
उत रही कछुक भाजत सोऊ रुख प्रताप मोरयो जबै॥१॥
बूड़े राज समाज, दिल्ली यवन समुद्र मैं।
आरज गौरव लाज, इक राखी परताप तुम॥ २॥
अकबर परम प्रवीन, राजपूत दागिल किए।
इक मिवार दागी न, तुव प्रताप बल कारनै॥ ३॥
दिल्ली रूप बजार, बिकीं सबै कुल कामिनी।
वीर रहे सिर डार, राणावत ही इक बचो॥ ४॥
क्षत्र क्षेत्र निःक्षत्र, भयो होत निहचय कबै।
जौ न धरत सिर छत्र, परम हठी परतापसिंह॥ ५॥
खोए राज समाज, असन बसन खोए सबै।
खोए सब सुख साज, पै राखो जातीयता॥ ६॥
लै परताप उछंग, जननी जन्म सुफल भयो।
अकबर काल भुअंग, कुचले फन जिन पग तरैं॥ ७॥
जदपि न राज समाज, फिरत सहत दुख बनहि बन।
तउ न तजी कुल लाज, विमल कीर्ति छाई जगत॥ ८॥
सबै अचंभो होय, कौन सहाय प्रताप को।
साँच सहायक कोय, वीर हृदय असि वीर सम॥ ९॥
अब लौं तजी न टेक, धर्म मान स्वाधीनता।
डिगन दियो नहिं नेक, अभिमानी परताप नै॥ १०॥
सुनत हाय कह आजु, प्रलय होन चाहत कहा।
राना छोड़त लाज, झुकत जु अकबर सामुहे॥ ११॥
दिल्ली के दर्बार, झुकिहै सिर मेवार को।
दिल्ली रूप बजार, शोभित राणावत करै॥ १२॥

जननि धरित्री हाय, क्यों न फटत तू तुरत ही।
पृथ्वीराज समाय, सुनै न फिर ये दुखद बच ॥ १३ ॥
देखु प्रताप बिचारि; नासमान संसार यह।
यह जीवन दिन चारि, क्यों सुख हित कीरति तजत ॥१४॥
देखौ सांचे बीर, एक आस गुन तुव गहे।
जीयत धरि जिय धीर, सो आसा जिन तोरिये ॥ १५ ॥
यह दिन द्वै सुख काज, कीरति अक्षय जिन तजहु।
क्षत्रिय लाज जहाज, जवन समुद्र न बोरिये ॥ १६ ॥
जो पवित्रतर मान, रच्छयो सहि सहि असह दुख।
सो न दीजिये जान, दिल्ली की बाजार में ॥ १७ ॥
सिला सिला टकराय, टूक टूक रोटी बिना।
भूखन किन मरि जाय, संग स्वतन्त्रता अतुल धन ॥ १८ ॥
तुव पुरुखे निज छाप, जो रछ्यो जग सीस दै।
सो बेचत परताप, क्षणिक सुखहि के कारनै ॥ १९ ॥
नासमान करि आस, अविनासी की आस तजि।
नासमान सुख रास, बुद्धिमान राना चहत ॥ २० ॥
इक दिन अकबर नाहि, मुगल राज्य हू नहिं रहै।
तुव कीरति रहि जाहि, जब लौं भारत नाम थिर ॥ २१ ॥
ह्वै है वह दिन एक, जब अकबर हू नहिं रहै।
रखिहैं कुल की टेक, सब क्षत्रिय तुव सरन गहि ॥ २२ ॥
खोवहु जिन निज धीरता, धोवहु जिन निज लाज।
सोवहु जिनि सुख सेज पैं, जब लौं सरै न काज ॥
जब लौं सरै न काज, न तब लौं थिर ह्वै रहिये।
जो दुख सिर पै परै धीर ह्वै सब कछु सहिये ॥
अहो वीर परताप हृदय दुर्बलता तोवहु।
उठौ उठौ करि कसौ, क्लीवता जड़ सों खोवहु ॥ २३ ॥

और अधिक हम कह लिखैं, तुम हौ परम सुजान
मान राखिये आपुनो, हँसै न जासों मान* ॥ २४ ॥

* खेद का विषय है कि पृथ्वीराज के पत्र की मूल प्रति हमें प्राप्त न हो सकी। उदयपुर से भी नैराश्यपूर्ण उत्तर मिला। बाबू गोकर्णसिंह जी बांकीपुर निवासी द्वारा केवल ये आठ सोरठे और दोहे मिले हैं—

सोरठा ।

अकबर घोर अधार, ऊंधाणा हिन्दू अवर ।
जागे जगदातार, पोहरे राण प्रतापसी ॥ १ ॥
अकबरिये इण बार, दागिल की सारी दुणी ।
अण दागिल असवार, चेटक राण प्रताप सी ॥ २ ॥
अकबर समद अथाह, सूरायण भरियो सुजल ।
मेवाड़ो तिण माह, पयण फूल प्रताप सी ॥ ३ ॥
आई हो अकबरियाह, तेज तिहारो तुरकड़ा ।
नमि नमि नीसरियाह, राण बिना महराजवी ॥ ४ ॥
चौथो चींतौ डाह, बांटी बाजतो तणूं ।
दीसै मेवाड़ाह तो सिर राण प्रताप सी ॥ ५ ॥

दोहा ।

जननी सुत अहडा जणे, जहड़ो राण प्रताप ।
अकबर सूतोहि ओंधके, जाण सिरानै साप ॥

सोरठा ।

पातल पाघ प्रमाण, सांची सांगा हरतणी ।
रही अभोगत राण, अकबर सू.ब भी अणी ॥ ७ ॥
सोवै सह संसार, असुर पलीलै ऊपरै ।
जागे तू निणवार, पोहरे राण प्रताप सी ॥ ८ ॥

प्रतापसिंह—(क्रोधपूर्वक, मोछों पर हाथ फेरता हुआ) अरे अधम प्रताप धिक्कार है तुझको ! छि !

"पराधीन ह्वै कौन चहै जीवौ जग मांही ।
को पहिरै दासत्वशृंखला निज पग मांही ॥
इक दिन की दासता अहै शत कोटि नरक सम ।
पल भर को स्वाधीनपनो स्वर्गहु ते उत्तम ॥ *"

सुनो सुनो—

जब लौं तन मैं प्राण न तब लौं मुख को मोड़ौं ।
जब लौं कर मैं शक्ति न तब लौं शस्त्रहि छोड़ौं ॥
जब लौं जिह्वा सरस दीन बच नहि उच्चारैं ।
जब लौं धड़ पर सीस झुकावन नाहिं बिचारैं ॥
जब लौं अस्तित्व प्रताप का क्षत्रिय नाम न बोरिहैं ।
जब लौं न आर्य ध्वज नभ उड़ै तब लौं टेक न छोरिहैं ॥

(नेपथ्य में)

जब लौं जग परताप, क्षत्रियत्व तब लौं अभय ।
कौन करत परिताप, परि संसय निर्मूल मैं ?

प्रतापसिंह । आहा ! गुरुदेव अच्छे समय आए । चलैं उनसे परामर्श करके पृथ्वीराज को उत्तर लिख दें ।

(प्रस्थान ।)

षष्ठ गर्भाङ्क ।

(स्थान--मेवाड़ का सीमाप्रान्त)

(आगे आगे घोड़े पर सवार राणा प्रतापसिंह, पीछे पीछे घोड़े पर कुछ सरदार लोग)

राणा । मेरे विपत्ति के सहायक भाइयो, मेरे साथ तुम लोगों

---

* "हिन्दी बंगवासी" १२ अप्रैल सन् १८९७ से उद्धृत ।

ने बड़े दुःख उठाए और अन्त में अब यह दिन आया कि मुझ भाग्यहीन के साथ तुम्हें भी अपनी प्यारी जन्मभूमि को छोड़ना पड़ता है। आहा सच है—

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"

एक सर्दार। अन्नदाता! यह आपके कहने की बात है? क्या आप अपने लिये यह कष्ट उठा रहे हैं? जिस जन्मभूमि की रक्षा में आप इतने दुःख सह रहे हैं वह क्या हमारी नहीं है? उसकी रक्षा क्या हमारा कर्त्तव्य नहीं है?

राणा। पर भाई इस अधम प्रताप के किए जन्मभूमि की रक्षा भी तो नहीं हुई? अब तो जन्मभूमि को भी शत्रुओं के हाथ में छोड़ कर अज्ञातवास करने चले हैं।

सर्दार। क्या हुआ पृथ्वीनाथ, कोई यह तो न कहेगा कि राणा प्रतापसिंह ने सुख की चाह में अपनी जननी जन्मभूमि को यवनों के हाथ बेचा? परमेश्वर की लीला कौन जानता है, क्या आश्चर्य है कि फिर ऐसा समय आवै जब श्री हुजूर अपने देश को शत्रुओं से लौटा सकैं, धर्मावतार, उस समय कलंकित पैर से तो इस राज सिंहासन पर न चढ़ेंगे।

राणा। इसमें तो सन्देह नहीं, और फिर अपनी आँखों से अपने देश की यह दुर्दशा देखते हुए जीते रहने से तो अनजाने विदेश में मरना ही अच्छा, क्योंकि—

"मरनो भलो विदेश को जहाँ न अपुनो कोय।
माटी खाँय जनावराँ महा महोच्छव होय॥"

एक सर्दार। ठीक है—

"दुरदिन पड़े रहीम कहि दुरथल जैये भाग।
जैसे जैयत घूर पर जब घर लागत आग॥"

राणा। सच है, अच्छा चलो भाइयो! चलो, अब इस स्थान की मोह माया छोड़ो (आंखों में आँसू भर कर)—

"जेहि रच्छी इक्ष्वाकु सो अब लौं रविकुल राज।"
हाय अधम परताप तू तजत ताहि है आज॥
तजत ताहि है आज प्राण सम प्यारी जोही।
हे मिवार सुखसार कृपा करि छमियो मोही॥
रह्यो सदा करि भार काज आयो तुम्हरे केहि।
बिदा दीजिये हमैं भार हलकाय आजु जेहि॥ १॥

(सब लोग सजलनेत्र से बेर बेर पीछे की ओर देखते देखते घोड़ा बढ़ाते हैं और दूर से घोड़ा दौड़ाते हाथ उठा कर इन लोगों को रोकते हुए भामाशा दिखाई पड़ते हैं।)

भामाशा। (पुकार कर) ओ मेवार के मुकुट! ओ हिन्दू नाम के आश्रयदाता! तनिक ठहरो, इस दास की एक बिनती सुनते जाओ। भामाशा को अकेले छोड़कर मत जाओ।

राणा। (घोड़ा रोक कर) भामाशा ऐसे घबराए हुए क्यों आ रहे हैं?

(भामाशा पास आ जाते हैं और घोड़े से कूद कर राणा के पैरों पर रोते हुए गिरते हैं, राणा घोड़े से उतर कर भामाशा को उठा छाती से लगाते हैं, दोनों खूब रोते हैं।)

राणा। मंत्रिवर, तुम ऐसे धीर वीर होकर आज ऐसे अधीर क्यों हो रहे हो?

भामाशा। प्रभो, मेरे अधैर्य का कारण आप पूछते हैं?

धिक सेवक जो स्वामि काज तजि जीवन धारै।
धिक जीवन जो जीवन हित जिय नाहिं बिचारै॥
धिक सरीर जो निज कर्तव्य विमुख ह्वै बंचै।
धिक धन जो तजि स्वामि काज स्वारथ हित संचै॥

धिक देशशत्रु किरतघन यह भामा जीवत नहिं लजत।
जेहि अछत वीर परताप बर असहायक देशहिं तजत॥१॥

राणा। परन्तु इसमें तुम्हारा क्या दोष है? तुमने तो अपने साध्य भर कोई बात उठा नहीं रक्खी?

भामाशा। अन्नदाता, यह आप क्या कहते हैं? परमस्वार्थी भामाशा ने आपके लिये क्या किया? अरे, आपके अन्न से पला हुआ यह शरीर सुख से कालक्षेप करै और आप बन बन की लकड़ी चुनैं और पहाड़ पहाड़ टकरांय! प्रतापसिंह स्वाधीनता रक्षार्थ, हिन्दू नाम अकलंकित करणार्थ देशत्यागी हों और भामाशा अपने जन्मभूमि निवास का स्वर्गोपम सुख भोगै! जिस राणा की जूतियों के कारण भामाशा भामाशा बना है, वही राणा पैसे पैसे को मुहताज हो, सहायातहीन होने के कारण निज देशोद्धार में असमर्थ हो प्राणोपम जन्मभूमि को छोड़ मरु भूमि की शरण लें, और भामाशा धनी मानी बनकर ऐसे उपकारी स्वामी की सेवा छोड़ कर विदेशीय, विजातीय, हिन्दू नाम को कलङ्कित करनेवाले राजा की प्रजा बनकर सुखपूर्वक कालयापन करे! धिक्कार है ऐसे धन पर! धिक्कार है ऐसे सुख पर!! धिक्कार है ऐसे जीवन पर!!!

राणा। पर भामाशा, तुम इसको क्या करोगे, जो भाग्य में होता है वही होता है। अब तुम क्या चाहते हो?

भामाशा। धर्मावतार, आज मेरी एक बिनती स्वीकार हो, यही मेरी अन्तिम बिनती है।

राणा। क्या प्रतापसिंह ने कभी तुम्हारी बात टाली है?।

भामाशा। तो अन्नदाता एक बेर फिर मेवार की ओर घोड़े

की बाग मोड़ी जाय। इस दास के पास जो पचासों लाख रुपए की सम्पत्ति दर्बार की दी हुई है उसीसे फिर एक बेर सेना एकत्रित की जाय और एक बेर फिर मेवार की रक्षा का उद्योग किया जाय। जो इसमें कृतकार्य हुए तो ठीक ही है और नहीं तो फिर जहाँ स्वामी वहीं सेवक, जहाँ राजा वहीं प्रजा।

(राणा सरदारों की ओर देखते हैं)

भामाशा। आप इधर उधर क्या देखते हैं, अरे यह धन क्या मेरे या मेरे बाप का है, यह सभी इन्हीं चरणों के प्रताप से है। मैं तो अगोरदार था अब तक अगोर दिया, अब धनी जानै और उनका धन जानै।

कविराज। धन्य मंत्रिवर, धन्य! यह तुम्हारा ही काम था—

जेहि धन हित संसार बन्यो बौरो सो डोलै।
जेहि हित बेचत लोग धर्म अपुने अनमोलै॥
जो अनर्थ को मूल सूल हिय में उपजावै।
पिता पुत्र, पति पत्नि, अनुज सों अनुज छुड़ावै॥
सो सात पुरुष संचित धनहिं तृण समान तुम तजत हौ
धन स्वामिभक्त मंत्रीप्रवर ताहू पैं तुम लजत हौ॥

(बहुत से राजपूत और भीलों का कोलाहल करते हुए प्रवेश।)

सब। महाराज, हम लोगों को छोड़ कर आप कहाँ जा रहे हैं? चलिये, एक बेर और लौट चलिये, जब हम सब कट मरैं तब आपका जिधर जी चाहे पधारैं।

राणा। जो आप लोगों की यही इच्छा है तो और चाहिए क्या?

चलो चलो सब वीर आजु मेवार उबारैं।
अहो आज या पुण्यभूमि तें शत्रु निकारैं॥

चिर स्वतंत्र यह भूमि यवन कर सों उद्धारैं।
हिन्दू नामहिं थापि धर्म अरिगनहिं पछारैं॥
नभ भेदि आजु मेवार पै उड़ै सिसोदिय कुलध्वजा।
जा सीतल छाया के तरें रहै सदा सुख सों प्रजा॥१॥

(चारों ओर से "महाराणा की जय" "हिन्दूपति की जय" आदि पुकारते हुए लोग उमङ्ग पूर्वक कूदते उछलते हैं।)

(पटाक्षेप।)

सप्तम गर्भाङ्क।

[स्थान दिल्ली-शाही महल]

(अकबर और ख़ानख़ाना)

अकबर। उदयपुर से तो निहायत ही मनहूस ख़बर आई है, राणा के वफ़ादार वज़ीर ने अपनी पुश्तहा पुश्त की कमाई दौलत बेदरेग़ राणा को दे दी है। सुना है उसके पास इतनी दौलत है जिससे वह पचीस हज़ार फ़ौज की बारह बरस तक परवरिश कर सकता है। शाबाश है उसकी दर्यादिली और वफ़ादारी को, आफ़रीं है उसके हुब्बेवतनी और बेदारमग़ज़ी को। क्या दुनियाँ में ऐसे भी लोग हैं?

ख़ानख़ाना। और सुना है प्रताप बड़े जोश के साथ फ़ौज मुहय्या कर रहा है और जंगजू राजपूत व भील बराबर आते जाते हैं।

अकबर। वाह रे प्रतापसिंह, मैंने भी बहुत सी तवारीख़ें देखी हैं मगर इसकी मिसाल मुझे कोई न मिली-शाबाश, ग़ज़ब का बहादुर और ग़ज़ब का जफ़ाकश है।

ख़ानख़ाना । मगर खुदावन्द, अब तो मेरी यही इल्तिजा है कि ऐसे शख़्श को अब ज़ियादा तकलीफ़ न दी जाय। हुज़ूर, ऐसे बहादुर शख़्श को सताना नाज़ेबा है ।

अकबर । दिल तो हमारा भी यही चाहता है कि अब प्रताप सिंह को बाक़ी ज़िन्दगी आराम से काटने दें। राजा पृथ्वीराज आते हैं, देखें इनके पास राणा का जबाब क्या आया है ।

(पृथ्वीराज का प्रवेश ।)

अकबर । आइये राजा साहब तशरीफ़ रखिये, कहिए उदयपुर से कुछ जवाब आया ?

पृथ्वीराज । हाँ जहांपनाह, राणा जी लिखते है "मैंने कभी संधि की प्रार्थना नहीं की, मेरी यदि कोई प्रार्थना है तो यही है कि अकबर स्वयं युद्धस्थल में आवें, एक हाथ में उनके तलवार हो और एक में हमारे; तब हमारा जी भर जाय, वह क्या वहां से बैठे बैठे लड़कों को तथा अपने साले ससुरों को भेजते हैं, हम क्या इन पर शस्त्र चलावें । "

अकबर । ठीक है, बहादुर प्रतापसिंह जो कुछ कहै सब बजा है 'ये कलमें उसीको ज़ेबा हैं ।'

ख़ानख़ाना । अब तो जहांपनाह मेरी इल्तिजा कुबूल हो और प्रतापसिंह पर बख़शिश की निगाह मब्जूल हो ।

अकबर । नबाब साहब, अगर आपलोगों की यही राय है तो मुझे कोई उज्र नहीं है, शहबाज़खाँ को लिख भेजिए वापस चले आएं ।

पृथ्वीराज । (स्वगत) धन्य गुणग्राहकता, यह अकबर ही के हृदय का काम है ।

(एक चोबदार का प्रवेश)

चोबदार। (ज़मीन छू कर सलाम करके) जहाँपनाह, उदयपुर से एक सिपाही आया है।

अकबर। फ़ौरन हाज़िर लाओ।

(घबराए हुए एक मुसलमान सैनिक का प्रवेश।)

सैनिक। (ज़मीन छू कर सलाम करके) ख़ुदावन्द, बड़ा ग़ज़ब हुआ, राना ने उदयपुर फिर दख़ल कर लिया।

अकबर। सब सरगुज़श्त जल्द बयान कर जाओ।

सैनिक। आलीजाह, परताप मुतवातिर शिकस्त खाते खाते शिकस्तःदिल हो कर अरवली की सरहद छोड़ कर भागने की फ़िक्र में हुआ। हम लोगों को इतमीनान हुआ कि अब मेवार बे खरख़शः हो गया, मगर इतने ही में उसके वज़ीर ने उसे बहुत सी दौलत की मदद दी और वह एकाएक बड़ी फ़ौज इकट्ठी कर हम लोगों पर टूट पड़ा, सिपहसालार शहबाज़ख़ाँ को फ़ौज को टुकड़े टुकड़े काट डाला, अब्दुल्लाख़ाँ और उसकी फ़ौज बिल्कुल मारी गई। ग़रीबपरवर हम लोगों पर मुतवातिर ३२ हमले किए गए। क़रीब क़रीब तमाम मेवार इस वक़्त दुश्मनों के कब्ज़े में है। सुना गया है कि अम्बर तक राना चढ़ गया था और मालपुरा की बाज़ार लूट ले गया। मैं किसी तरह जान बचा कर हुज़ूर को ख़बर देने आया और लोगों की मालूम नहीं क्या हालत हुई।

अकबर। (क्रोधपूर्वक ख़ानख़ाना से) कहिए अब आप क्या फ़र्माते हैं?

ख़ानख़ाना। ख़ुदावन्द, प्रताप के लिये तो यह कोई नई बात नहीं है, मगर हुज़ूर का हुक्म जो एक मर्तबः ज़ुबान

मुबारक से निकल चुका क्योंकर पलट सकता है ?

अकबर । मगर इसमें सख़्त बदनामी होगी ।

पृथ्वीराज । जगत्विजयी अकबर के उद्दंड प्रताप को कौन नहीं जानता ? प्रताप के मुक़ाबिले अकबर को कौन बदनामी दे सकता है ?

ख़ानख़ाना । और फिर मेरी अक़्ल नाक़िस में तो प्रताप ऐसे बहादुर से दरगुज़र करना ऐन फ़ख़्र का बाइस है बल्कि उसे सताना ही बदनामी है ।

(नेपथ्य से "अज़ान" का शब्द सुनाई देता है ।)

अकबर । नमाज़ का वक़्त हो गया, इस वक़्त यह शूरः मुलतबी रहै, फिर ग़ौर किया जायगा ।

(सभों का प्रस्थान)

अष्टम गर्भाङ्क

(स्थान उदयपुर—राज्य दर्बार—परम सुसज्जित तथा आलोकमय राज्यसिंहासन पर महाराणा प्रतापसिंह विराजमान, दोनों ओर गुलाबसिंह, भामाशा, कविराज आदि तथा राजपूत और भील सरदारगण श्रेणीबद्ध खड़े हैं ।)

(नर्तकीगण नाचती और गाती हैं ।

गाओ गाओ आनन्द बधाइयाँ ।

हिन्दूपति छत्रिय कुल गौरव राणा सुख सरसाइयाँ ।
राखी लाज आज भारत की अपुनी टेक निबाहियाँ
जुग जुग जीऐं मेरे साईं तन मन धन सब वारियाँ ॥

राणा। मेरे प्यारे भाइयो! आज श्री एकलिङ्गजी की कृपा और तुम लोगों के उद्योग से यह दिन देखने में आया कि इस पवित्र स्थान से हिन्दूद्वेषी यवनों का पौरा गया और फिर आज हम लोगों ने अपनी प्यारी जन्मभूमि का दर्शन पाया। जिस स्वाधीनता रक्षार्थ हम लोगों के अगणित पूर्व पुरुषों ने अकुंठित हो संग्रामस्थल में परम प्रिय जीवन विसर्जन किया था, आज जगदीश्वर की कृपा से वह हमें प्राप्त हुई, इससे बढ़कर भी कोई आनन्द की बात हो सकती है? प्यारे भाइयो, बस हमारा यही उपदेश है कि संसार में जीना तो अपने गौरव सहित जीना, नहीं मरना तो हई है। आहा! महाबाहु अर्जुन का कैसा आदरणीय और अनुकरणीय सिद्धांत था।

"आयुः रक्षति मर्माणि आयुरन्नं प्रयच्छति।
अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम्॥"

कविराजा। ठीक है पृथ्वीनाथ, आप जो आज्ञा कर रहे हैं उसे प्रत्यक्ष उदाहरण स्वरूप कर भी दिखाया। आहा!

जो न प्रगट होते प्रताप भारत हितकारी।
को करि सकत कलङ्करहित हिन्दू व्रतधारी॥
अकबर से उद्दंड शत्रु दरि निज प्रण राखी।
को हिन्दू गौरव को सब जग करतो साखी॥
या प्रबल म्लेच्छ इतिहास में हिन्दू नाम बिलावतो।
को हे प्रताप बिनु तुव कृपा यह अपवाद मिटावतो॥

राणा। कविराज जी, आप मुझे व्यर्थ की बड़ाई देते हैं, मैं तो निमित्त मात्र था। जो ये सब राजपूत और भील सरदार गण सहायता न करते तो मैं अकेला क्या कर

सकता था। आहा! झाला महाराज मानसिंह ने तृणवत् अपना शरीर दे दिया और मुझे बचाया, महाराज खंडे राव, राजा रामसिंह ऐसे वीर पुरुषों ने मेरे लिये क्या क्या न किया। हाय! मैं अब इनके लिये क्या कर सकता हूं? बड़े कविराजा जी ने अपने देश को जैसी सेवा की और जिस भांति प्राण दिया कौन नहीं जानता जब तक पृथ्वी रहेगी इन लोगों का यश स्वर्णाक्षरों में मेवार के इतिहास में अङ्कित रहेगा। प्यारे चेतक ने पशु हो कर मेरा जैसा उपकार किया उससे मैं कभी उऋण नहीं हो सकता। मन्त्रिवर, जहां चेतक का शरीर गिरा है एक उत्तम समाधि बनवाई जाय और प्रति वर्ष उसके सम्मानार्थ वहाँ मेला लगा करे। मैं स्वयं वहां चला करूंगा। (कविराजा से) कविराजा जी, आप एक परवाना लिखिए कि जब तक मेरे और भामाशा के वंश में कोई रहे, मंत्री का पद उसी को दिया जाय और मैं इन्हें प्रथम श्रेणी के सरदारों में स्थान दे कर झाट-कपट ताज़ीम, पैर में सोने का लङ्गर, पाग पर मांझा आदि यावत् प्रतिष्ठा बख्शता हूं, जो इनकी सेवा के आगे सर्वथा तुच्छ है। (गुलाबसिंह के प्रति) वत्स गुलाबसिंह, तुमने अपने प्रण को जैसी दृढ़ता से निबाहा सबको उससे शिक्षा लेनी चाहिए। आहा! तुम्हारा और मालती का प्रेम आदर्श स्वरूप है। तुम दोनों ने अपने अपने प्रण को दृढ़ता पूर्वक निबाहा, इसलिये अब विलंब का प्रयोजन नहीं। मन्त्री मेरी ओर से मालती के विवाह की तैयारी की जाय। दायजे में जागीर आदि का सब प्रबन्ध मैं स्वयं करूंगा।

आप एक शुभ मुहूर्त दिखलावैं और अब इस शुभ संयोग में विलंब न करें, मैं स्वयं इन दोनों का विवाह अपने हाथ से करूंगा।

(गुलाबसिंह राणा के पैरों पर गिरता है और राणा उठा कर उसे हृदय से लगाते हैं)

(राजकुमार के प्रति) देखो कुंवर जी, अपने धर्म और देशरक्षार्थ मैंने जो जो कष्ट सहे हैं तुमने अपनी आंखों से देखा है, देखो ऐसा न हो कि तुम हमारे पीछे विलास-प्रियता में पड़ अपने पिता का नाम डुबाओ, प्रताप की कीर्ति पर धब्बा लगाओ और मरने पर मेरी आत्मा को सताओ। मेरे इन वाक्यों को सदा स्मरण रखना —

जबलौं जग में मान तबहिं लौं प्रान धारिये।
जबलौं तन में प्रान न तब लौं धर्म छाड़िये।
जबलौं राखै धर्म तबहि लौं कीरति पावै॥
जबलौं कीरति लहै जन्म स्वारथ कहवावै॥
हे वत्स सदा निज वंश की मरजादा निरबाहियो।
या तुच्छ जगत सुख कारनै जिन कुल नाम हँसाइयो॥

(सरदारों के प्रति)

मेवाड़ की शोभा, मेरे प्यारे भाइयो,—
यह बालक अज्ञान, सौंपत तुमको आजु हम।
जबलौं तन में प्रान मान जान जिनि दीजियो।

(सब सरदारगण सिर झुका हाथ जोड़ सजल नेत्र थ्वी की ओर देखते हैं)

(नर्तकीगण गाती हैं ।)

यह दिन सब दिन अचल रहै ।
सदा मिवार स्वतन्त्र विराजै निज गौरवहि गहै ॥
घर घर प्रेम एकता राजै, कलह कलेस बहै ।
बल, पौरुष, उत्साह, सदृढ़ता आरज बंस चहै ॥
वीर प्रसविनी वीर भूमि यह वीरहि प्रसव करै ।
इनके वीर क्रोध मैं परि अरि कायर क्रूर जरै ॥
राजा निज मरजाद न टारै, प्रजा न भक्ति तजै ।
परम पवित्र सुखद यह शासन सब दिन यहां सजै ॥
जब लौं अचल सुमेरु विराजत जब लौं सिन्धु गँभीर ।
तबलौं हे प्रताप तुव कीरति गावैं सब जग वीर ॥
हे करुणामय दीनबन्धु हरि नित तुव कृपा बसै ।
यह आरत भारत दुख तजि कै परम सुखहि बिलसै ॥१॥

(परम प्रकाश के साथ धीरे धीरे पटाक्षेप)

* श्रीशुभम् *

